अंतस

अर्द्धवार्षिक पत्रिका, अंक-13, 26 जनवरी, 2018

आदर्श जीवन

करुणा

प्रेम

अहिंसा

सत्य

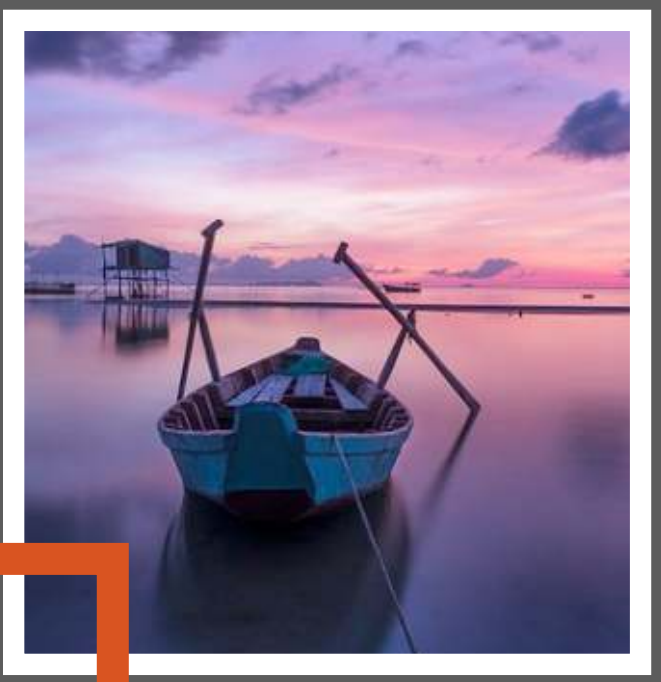

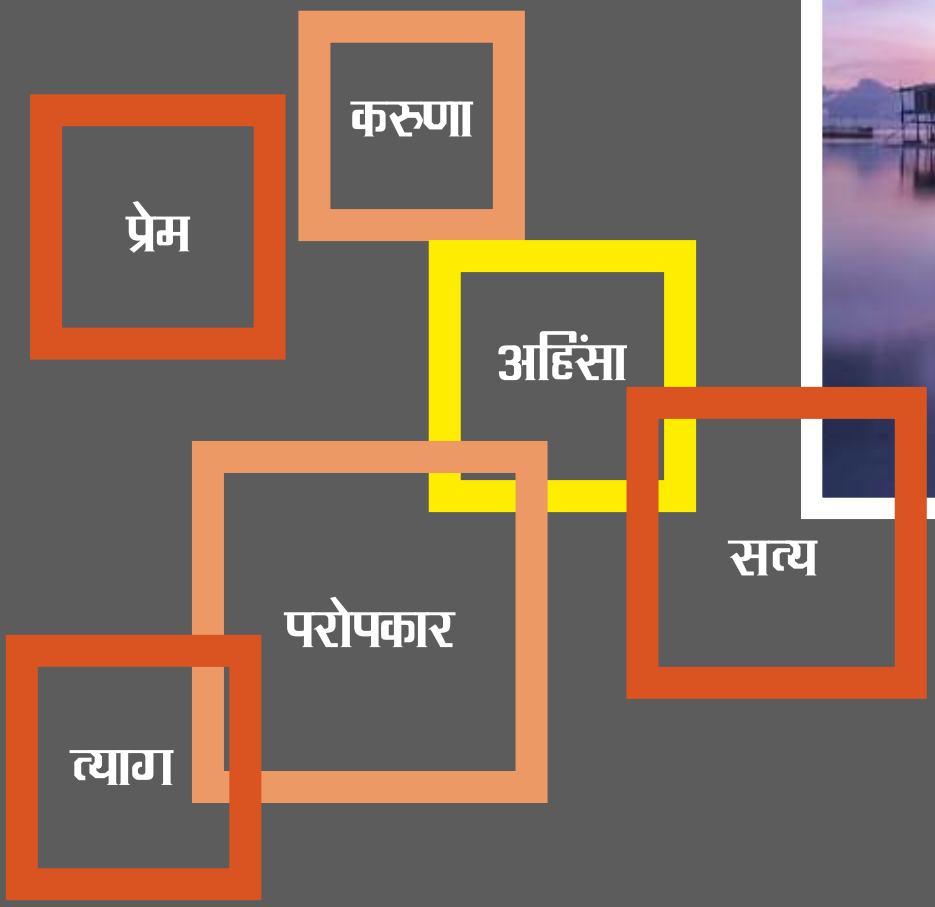

परोपकार

त्याग

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर

दिव्यागों हेतु पथ

व्याख्यान भवन

नियम-निर्देश

- अंतस के आगामी अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक एवं यथासंभव अप्रकाशित रचनाएं भेजने का कष्ट करें।
- रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।
- लेखों में शामिल छाया-चित्र तथा आँकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए। प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।
- अनुदित लेखों की प्रामाणिकता अवश्य सुनिश्चित करें। अनुवाद में सहायता हेतु संस्थान राजभाषा प्रकोष्ठ से संपर्क कर सकते हैं।
- प्रकाशन के लिए किसी भी लेखक को किसी प्रकार का मानदेय नहीं दिया जाएगा।
- अंतस में उन सभी प्रकार के विचारों का स्वागत होगा जो संस्थान परिसर में रहने वाले अथवा काम करने वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं किन्तु किसी भी प्रकार के राजनीतिक विचारों को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा।
- अंतस में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।
- रचनाएँ अंतस के अनवरत दो अंकों में प्रकाशित न होने की स्थिति में संबंधित रचनाकार राजभाषा प्रकोष्ठ में श्रीमती सुनीता सिंह से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

स-आभार
संपादक मंडल

अंतस परिवार

संरक्षक
प्रोफेसर मणीन्द्र अग्रवाल
कार्यवाहक निदेशक

परामर्शदाता
श्री कृष्ण कुमार तिवारी
कुलसचिव

मुख्य संपादक
डॉ. कांतेश बालानी

संपादक
डॉ. वेदप्रकाश सिंह

संपादन सहयोग
प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा
प्रोफेसर भारत लोहनी
प्रोफेसर शिखा दीक्षित
डॉ. अनुराग त्रिपाठी
डॉ. अर्क वर्मा
श्री चन्द्र प्रकाश सिंह
श्री विष्णु प्रसाद गुप्ता

अभिकल्प (Design), संकलन
सुनीता सिंह

अनुवाद
श्री जगदीश प्रसाद
श्री भारत देशमुख

छायाचित्र
श्री रवि शुक्ल
श्री गिरीश पंत

संकेतक

शुभेच्छा

निदेशक की कलम से 4
कुलसचिव का संदेश 5
सम्पादकीय 6

गुरुदक्षिणा

प्रो. पंकज जलोटे 7

साहित्य–यात्रा

नदियों में भी जीवन है : संजीव गुप्त 8
अच्छा जीवन धार्मिक चिंतन परम्परा की दृष्टि से : प्रो. अरुण कुमार शर्मा 9
पहले आप पहचानों रे साधो : सोमनाथ डनायक 11
आदर्श जीवन : डॉ. अर्क वर्मा 16
संस्कार सिंचन : लक्ष्य गंगवार 18
श्रद्धांजलि-शचीन्द्रनाथ सान्याल : ऊषा निगम 19
म्यांमार, भारतीय मुसलमान और भूतकाल का भूत : मोहम्मद उस्मान 21
राष्ट्र, माँ और आदर्श जीवन : सुकर्मा थरेजा 22
बेकार किराएदार : विकास दुबे 23
आदर्श जीवन : तृप्ति सारस्वत 24
प्रयत्न (कविता) : अभिषेक के गुप्ता 25
सृजन (कविता) : रूपम जैन 25
खुशी : प्रीति शर्मा 27
भारत माँ का सपूत : समृद्ध जोशी 28
आइना : श्वेता सचान 30
यात्रा-संस्मरण : श्रीमती अंजली विश्वास कुलकर्णी 31
मन : प्रियका रानी 33
आदर्श जीवन मेरे मत में : डॉ. अंजना पोद्दार 34
पापा (कविता) : वंदना सिंह 39
आदर्श जीवन के अंग (कविता) : धर्मेन्द्र पटेल 40
पुराना भारत : ऋषभ चतुर्वेदी 40
तुम बसो मेरे नयन में : श्री आर के दीक्षित 42

विरासत

माँ कहानी : विष्णुप्रभाकर 35
सूफी काव्य 26

भाषा विमर्श

भाषा लिपि राष्ट्रभाषाएं एवं राजभाषा : जगदीश प्रसाद 43
असमिया भाषा : भारत देशमुख 46

बालबत्तीसी

बुद्धि की परीक्षा 48
दीपावली : गार्गी जोशी 50
खेल खेल में हिंदी व्याकरण : राजभाषा प्रकोष्ठ 51

स्वास्थ्य–चर्चा

स्वास्थ्य विश्लेषण : डॉ. एस के मिश्रा 41

कार्यालयीन टिप्पणियाँ 57

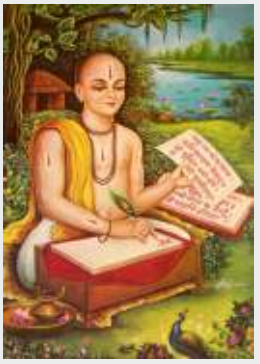

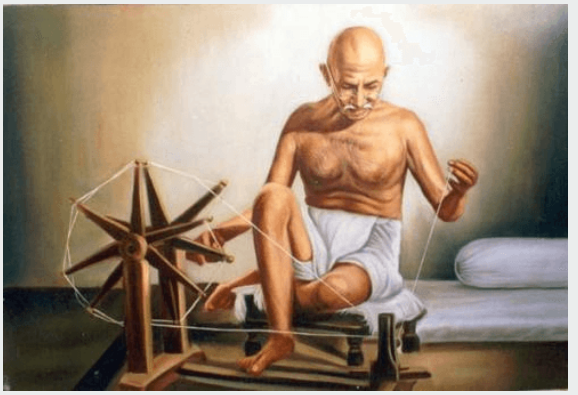

प्रिय पाठकों

आप सभी को गणतंत्र दिवस की बधाई!

अंतस का त्रयोदश अंक आपके हाथ में है इस अंक का शीर्षक है आदर्श जीवन । मेरी दृष्टि में प्रत्येक मनुष्य कुछ आदर्शों के साथ जीता है अब वह आदर्श कैसे हैं, यह उसके संस्कारों पर निर्भर है। मानव यदि अपने कर्म निष्काम रूप से करने लगे तो स्वतः ही वह आदर्श जीवन जीने लगेगा। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि आदर्श जीवन कर्म से कम, अपितु कर्म के पीछे की भावना से निर्धारित होता है। सामान्यतः दोनों में अन्तर नहीं होता, अतः अधिकांश लोग व्यक्ति के कर्मों से उसके बारे में अपना मंतव्य बना लेते हैं। लेकिन कभी-कभी यह विचार गलत धारणा पर पहुंचा देता है, जैसे संत रविदास जी मोची का कार्य करते हुए अपने परिवार का भरण-पोषण किया करते थे और तत्कालीन समाज में इस कार्य को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। लेकिन उनकी निर्लिप्त भाव की आध्यात्मिक परिपक्तवा इतनी अप्रतिम एवं उच्चकोटि की थी कि उनकी कठौती के पानी में गंगा अवतरित हुईं।

आप सब इस अंक को पढ़ें और ज्यादा से ज्यादा लोगों को पढाएं और प्रकाशन को सार्थक करें। इसी कामना के साथ, धन्यवाद।

मणीन्द्र अग्रवाल
कार्यवाहक निदेशक

प्रिय पाठकों

अनुशासन जीवन की सफलता का मूल मंत्र है । व्यक्ति, अनुशासन का पालन करते हुए ही आदर्श जीवन स्थापित कर सकता है । जब व्यक्ति अपनी भौतिक इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को सीमित करके, पूर्वाग्रह से रहित मर्यादित आचरण का प्रदर्शन करते हुए जन कल्याण को अपना उद्देश्य बना लेता है तो उस स्थिति में ही वह आदर्श जीवन-यापन कर सकता है। आदर्श जीवन न केवल घर, परिवार एवं समाज के लिए उपयोगी होता है बल्कि राष्ट्र निर्माण एवं विश्व की उन्नति में भी अहम भूमिका निभाता है।

विद्यार्थी राष्ट्र के कर्णधार होते हैं। आज के विद्यार्थियों में से ही कल के लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर, साहित्यकार एवं राजनेता हो सकते हैं, परंतु इस कथन की सत्यता उसी दशा में सिद्ध होगी जब शिक्षा में जीवन और चरित्र दोनो की उन्नति पर बल दिया जाए।

हिन्दी पत्रिका 'अंतस' का यह अंक भी आदर्श जीवन पर आधारित है । मैं संस्थान के समस्त परिसरवासियों और विशेष रूप से विद्यार्थी समुदाय का आह्वान करता हूँ कि वे आदर्श जीवन का पालन करते हुए सामाजिक जीवन, शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में नये-नये कीर्तिमान स्थापित करें जिससे देश व दुनिया लाभान्वित हो सके।

नव वर्ष की शुभकामनाओं के साथ पत्रिका का 13 वां अंक आपके सामने प्रस्तुत है । मैं पत्रिका के समस्त लेखकों एवं रचनाकारों का आभार व्यक्त करता हूं और पाठकों से अनुरोध करता हूं कि वे बतौर रचनाकार भी अंतस का हिस्सा बनने का प्रयास करें तथा आगामी अंक के लिए पत्रिका के संपादक मंडल को अपने लेख एवं रचनाएं उपलब्ध करायें जिससे पत्रिका को और अधिक आकर्षक, उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक बनाया जा सके।

आभार सहित

कृष्ण कुमार तिवारी
कुलसचिव

शुभेच्छा

अंतस का यह अंक "आदर्श जीवन" को समर्पित है। हर व्यति का कोई न कोइ प्रेरणा स्त्रोत होता है, जिसे ध्यान में रखकर वह जीवन व्यतीत करता है। उसकी जीवन शैली न केवल मनुष्य को समान तरीके से जीने को प्रेरित करती है,अपितु मुश्किल अवसर में वह राह दिखाने का काम भी करती है। यह युक्ति उस व्यक्ति को दृढ़-निश्चय कर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है यही जीवन में पनपी धारणा, स्वयं को अखंडता से पूर्ण करती है और सही समय पर उचित फैसला लेने का रास्ता भी दर्शाती है। यह प्रणाली कब दिनचर्या में तबदील होकर हमारा अंदाज बन जाती है कि हम स्वतः उसे अपना अभिन्न अंग बना लेते हैं। उस नई दिशा से हम प्रेरित होकर अगर उसे हम अपनी जीवन शैली का अंग बना लेते हैं, तो निश्चित रूप से उस व्यक्ति का जीवन आदर्श रहा होगा! अगर आज हम स्वयं को गुजरे हुए कल से बेहतर बना पाते हैं, और सहजता से पूरे समाज के भले के लिए कार्य करते हैं, तो हमारे लिए यही आदर्श जीवन है। किसी दूसरे की रची मानकों या समाज के निर्देशों या फिर दिखावे की चाहत एवं माता-पिता की महत्त्वाकांक्षा से भी परे, अपनी क्षमता का परिपूर्ण एहसास कर, जिम्मेदारी से अपने कर्तव्य निर्वाह करना ही आदर्श जीवन है। चाहे बगीचे मे एक फूल का मकसद बेवजह खुशबू बिखराकर फिर मुरझा जाना ही क्यों न हो, पर उन्हीं उम्मीदों पर खरा उतरना आदर्श जीवन है...क्योंकि वही उसका मकसद है... और वही उसकी प्रवृति। इस भावना का एक अभिप्राय और भी है कि सोच,भाव, एवं कर्म एक ही डोर से बंधे हों और एक-साथ एक ही दिशा मे कार्यरत हों।

अंतस के इस अंक में आदर्शता के पृथक-पृथक रूप दर्शाये गए हैं। स्वयं से लेकर समाज तक, प्रेम से लेकर भक्ति तक,आदि से लेकर अंत तक...हर बदलाव भी जीवन के आदर्श मूलभूत कायम रख परिवर्तन का आलिंगन करता है। जात-प्रांत-धर्म-लिंग-भेद का विच्छेद न कर, उसे पृष्ठभूमि बनाकर सभी को समान-रूप में आदर सहित स्वीकार करना आदर्शता का प्रतीक है। इसके लिए आत्म-जागरूकता भी अति-आवश्यक है जो सही और गलत में भेद कर सके और यह भी देख सके कि हम सब एक ही तो हैं ।

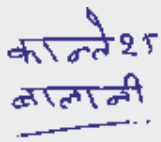

डॉ कांतेश बालानी
मुख्य संपादक

प्रोफेसर पंकज जलोटे

इंसान की यह स्वभावगत प्रवृत्ति होती है कि वह परहित की तुलना में स्वहित को अधिक महत्व देता है । स्वहित से आशय है - इंसान का अपना हित । यदि इंसान के मन में कुछ पाने और कुछ देने का भाव समाहित हो जाए तो सामाजिक संतुलन बनाए रखने की आशा की जा सकती है । हर्ष का विषय है कि वर्तमान युग में भी यह भाव अस्तित्व में है जो गुरु-शिष्य परंपरा का रूप ले चुकी है । गुरु-शिष्य परंपरा के मूल में गुरु-दक्षिणा का आविर्भाव हुआ जो किसी-न-किसी रूप में आज भी प्रासंगिक है । गुरु के सम्मान में कुछ अर्पण कर देना वस्तुतः गुरुदक्षिणा है । हमारे संस्थान यानी भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के विद्यार्थी इस परंपरा के निर्वहन में सदैव तत्पर रहते हैं । यहाँ के विद्यार्थी चाहे दुनिया में कहीं पर हों, समाज के उत्थान तथा अपने मातृसंस्थान की प्रगति के लिए सजग रहते हैं । अंतस के महत्वपूर्ण स्तम्भ 'गुरुदक्षिणा' में हम इस बार संस्थान के पूर्व छात्र प्रो. पंकज जलोटे के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाल रहे हैं तथा मातृसंस्थान के प्रति उनके समर्पण के भाव का सम्मान कर रहे हैं ।

मूल रूप से लखनऊ के रहने वाले प्रो. पंकज जलोटे बचपन से मेधावी छात्र रहे हैं । प्रो. पंकज जलोटे ने 1980 में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर से विद्युत अभियांत्रिकी में बी.टेक. की उपाधि प्राप्त करने के बाद 1982 में पैन्सिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सटी से एम.एस. की पढ़ाई पूरी की । इसके बाद 1985 में आपने यूनिवर्सिटी ऑफ एलिनॉस से संगणक विज्ञान में पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की । अपनी शिक्षा-दीक्षा के बाद प्रो. पंकज जलोटे ने शैक्षिक संस्थानों तथा व्यावसायिक कंपनियों से नाता जोड़ लिया । आपने 1985 से लेकर 1989 तक यूनिवर्सिटी ऑफ मैरीलैण्ड के संगणक विज्ञान विभाग में सहायक प्राध्यापक के रूप में अपनी सेवाएं दीं । इसके बाद 1989 में प्रो. जलोटे ने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग में सहायक प्राध्यापक के रूप में पदभार ग्रहण किया और परिपक्व शिक्षक के रूप में अपनी पहचान बनाई । आप 1998 से 2002 तक इस विभाग के विभागाध्यक्ष भी रहे । प्रो. जलोटे इन्फोसिस टेक्नालॉजी लिमि., बैंगलोर के वाइस प्रेसिडेन्ट (क्वालिटी) भी रहे हैं । इसके अलावा आपको 2006 में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली के संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग में माइक्रोसॉफ्ट चेयर प्रोफेसर नियुक्त किया गया था । संप्रति, आप इंद्रप्रस्थ सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान के निदेशक हैं ।

प्रो. पंकज जलोटे अपनी प्रतिभा एवं कार्य अनुभव के आधार पर विज्ञान एवं इंजीनियरी के छात्रों का मार्गदर्शन करते रहते हैं । किसी विशेष अवसर पर देश के भावी इंजीनियरों को सलाह देते हुए उन्होंने कहा था कि छात्रों को इंजीनियरी की पढ़ाई करते समय न केवल अवधारणाओं पर अवलम्बित होना चाहिए बल्कि उन्हें व्यवहार में भी लाना चाहिए अर्थात् उनका प्रयोग एवं विश्लेषण करते रहना चाहिए । आशावादी सोच रखने वाले प्रो. जलोटे देश में विज्ञान एवं इंजीनियरी की शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि को आवश्यक मानते हैं। वे मानते हैं कि आने वाले दिनों में इंजीनियरी शिक्षा के प्रसार-प्रचार में ऑनलाइन शिक्षा, फ्लिप्ड क्लासरूम

मॉडल आदि जैसी विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकी का उपयोग होगा तथा उद्योग जगत एवं शैक्षिक जगत के मध्य सहयोग बढ़ेगा जिससे हमारी शिक्षा-प्रणाली को और अधिक व्यावहारिक एवं रोजगारपरक बनाने में मदद मिलेगी । प्रो. जलोटे अपनी स्पष्टवादिता के लिए भी जाने जाते हैं जैसा कि वे कहते हैं - यदि छात्र को इंजीनियरी की पढ़ाई में रूचि नहीं है तो उसे दूसरे विषय का चयन करना चाहिए और पूरी मेहनत के साथ उस विषय का अध्ययन करना चाहिए जिससे छात्र के व्यक्तित्व का विकास होगा और वह अपना सफल कैरियर बना पाएगा । छात्रों की शैक्षिक रूचि व अरूचि के विषय में समाज एवं परिवार के हस्तक्षेप को वे अनुचित मानते हैं ।

प्रो. पंकज जलोटे ने सॉफ्टवेयर इंजीनियरिंग के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध किये हैं । सॉफ्टवेयर इंजीनियरी के क्षेत्र में गुणवत्ता में वृद्धि एवं प्रबंधन, कार्यप्रणाली में सुधार, रिसोर्स मॉडल एवं ऑप्टीमाइजेशन आदि प्रो. जलोटे के रूचि के विषय रहे हैं । आपकी चार पुस्तकें यथा - Software Project Management in Practice, CMM in Practice: Processes for executing software projects at Infosys, An Integrated Approach to Software Engineering तथा Fault Tolerance in Distributed Systems प्रकाशित हुई हैं । इसके अलावा देश-विदेश के कई प्रतिष्ठित जर्नलों में आपके आर्टिकल प्रकाशित हो चुके हैं ।

प्रो. पंकज जलोटे उन सौभाग्यशाली छात्रों में रहे हैं जिन्होंने अपने मातृ संस्थान में शिक्षक के रूप में सेवाएं प्रदान की हैं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर में आपने शैक्षणिक जिम्मदारियों से समय निकालकर सामाजिक कार्यों में रूचि दिखाई । आपका अपारच्युनिटी स्कूल से विशेष लगाव रहा । यहाँ बताते चलें कि अपारच्युनिटी स्कूल में सर्वेन्ट क्वार्टर में रहने वाले तथा आस-पास के गाँवों के छात्रों को सुविधायुक्त शिक्षा मुहैया कराई जाती है । प्रो. जलोटे खेलों के प्रति भी रूचि रखते हैं । संस्थान में आयोजित होने वाली खेलकूद प्रतियोगिताओं और विशेष रूप से पैदल-चाल प्रतियोगिता में वे भाग लिया करते थे । आपके परिवार में आपकी पत्नी श्रीमती शिखा जलोटे के अलावा दो पुत्रियाँ हैं।

आकर्षक व्यक्तित्व के धनी प्रो. पंकज जलोटे आज भी भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए आशान्वित रहते हैं और अपनी ओर से संस्थान की विकास यात्रा में सहयोग देने के लिए तत्पर रहते हैं। संस्थान के संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग को ऊँचाईयों तक ले जाने के उद्देश्य से प्रो. जलोटे के द्वारा बेस्ट सॉफ्टवेयर अवार्ड तथा बेस्ट टीचर अवार्ड के लिए राशि प्रदान की जाती है जिससे अध्ययनरत छात्रों में उत्साह का संचार होता है और वे संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के क्षेत्र में नये मुकाम हासिल करने के लिए प्रेरित होते हैं । इसके अलावा प्रो. जलोटे द्वारा 2016 में सी एस ई इनडाऊमेन्ट फंड के लिए राशि प्रदान की गई है । प्रो. जलोटे के ये भाव संस्थान के प्रति उनके समर्पण को दर्शाते हैं । संस्थान प्रो. जलोटे का आभारी है और आशा करता है कि इसी प्रकार पूर्व-छात्र संस्थान की प्रगति में अपना सहयोग देते रहेंगे और संस्थान को नई ऊचाईयों पर ले जाएंगे ।

संकलन एवं अनुवाद
राजभाषा प्रकोष्ठ
भा.प्रौ.सं.कानपुर

प्रिय डॉ. बालानी जी,

यह जानकर मन आनंद और हर्ष से भर गया कि आई. आई. टी. कानपुर से संस्थान के स्तर पर एक हिन्दी पत्रिका निकल रही है। नाम भी बेहद सुंदर और सार्थक है-अंतस। मेरी ओर से आपको और आपकी पूरी टीम को बहुत-बहुत बधाई।

अंतस के पिछले कुछ अंक देखे और सच पूछिए तो एक अजीब तरह के अतीत-मोह से मन घिरा हुआ है। बीस-बाइस वर्ष पहले जब मैं संस्थान का छात्र था तब एक इच्छा मन में थी कि संस्थान में एक हिन्दी पत्रिका निकले, लेकिन वह पूरी न हो सकी। हालाँकि छात्र रहते हुए ही मेरी कविताओं और लेखों को देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन का सौभाग्य मिला जैसे - दैनिक जागरण, कादम्बिनी, अमर उजाला, वागर्थ, इत्यादि, लेकिन संस्थान की हिन्दी पत्रिका में प्रकाशित होना विशेष बात होती।
मेरी ओर से पत्रिका के लिए बहुत बहुत शुभकामनाएं। एक कविता प्रेषित कर रहा हूँ, आशा है यथोचित उपयोग करेंगे।

आपका
संजीव गुप्त

नदियों में भी जीवन है

आस्था तो यही कहती है
कि नदियों में जीवन है

वे माँ हैं

और एक पर्यावरण-विद ने कहा था -
हमने तो एक पूरा धर्म ही रच दिया
जीवनदायिनी नदियों की
रक्षा के लिए

इतिहास यही बताता रहा है
कि नदियों की गोद में ही
जन्मीं हैं सभ्यताएं

विज्ञान ने बताया
कि वे एक पारिस्थितिक तंत्र हैं
जिनमें स्वयं जीवन ना भी हो
तो भी पलती रहतीं हैं उनके जल में
अनेक जीवन धाराएं

और अब कानून ने भी
यह मान लिया है कि
वे जीवित मनुष्यों की तरह हैं

कानूनन

तो फिर क्या सजा हो
नहरों के रूप में
उनकी रक्तशिराओं को काटनें की

उन्हे एक जगह बाँध देने की
और फिर रिस रिस कर
गिरते जाने के लिए
मजबूर करने की

अपशिष्ट और जहर से भरे इंजेक्शन
लगातार उन पर
लगाते रहने की

नालों की शक्ल में !

संजीव गुप्त (पूर्व छात्र)

अच्छा जीवनरु धार्मिक चिंतन परंपरा की दृष्टि से

जैसा कि पाठकगण जानते ही हैं अंतस का यह अंक आदर्शजीवन अर्थात सत्य को समर्पित है। सत्य ही तो है जो व्यक्ति के स्तर पर एक सुखी या दु:ख-मुक्त जीवन को जन्म देता है और सामूहिक स्तर पर एक सभ्य समाज को। इस लेख के माध्यम से मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुक्ति और भुक्ति जो दो स्तरों पर दो विरोधी चीजें समझी जाती हैं – एक व्यष्टि के स्तर पर और एक समष्टि के स्तर पर – एक युग्म की तरह हैं और उनको एक साथ लेकर निकलना ही अच्छा जीवन है। यही सत्य भी है। मेरी यह मान्यता है कि सुंदर और शिव, सत्य के ही दूसरे दो नाम हैं। ध्यान रहे कि गांधीजी ने अपने जीवन काल में ही 'ईश्वर ही सत्य है' इस मान्यता को परिमार्जित कर 'सत्य ही ईश्वर हैं' ऐसा कर दिया था। मुझे ऐसा क्यों प्रतीत होता है कि जिन लोगों ने परावर्तन विधि द्वारा जीवन पर दृष्टिपात किया होगा तो उन्हें यह भी समझ में आ गया होगा कि सत्य और असत्य में सत्ता मीमांसा-गत कोई भेद नहीं है। जैसा कि मैंने आगे कहा है कि सत्य तो यही है कि हमारे सामने सब कुछ असत्य है। जीवन की इस सांध्य-बेला में मेरे लिए अमूर्त दर्शन और वैयक्तिक अनुभवों और अनुस्थापनाओं को पृथक करके देखना तो संभव नहीं होगा और इसीलिए मेरी विनती है कि इस लेख में प्रस्तुत विचार केवल तर्क विवेक के रूप में ही न देखे जाएँ अपितु उन्हें एक जीवन विशेष में एक बाह्य संदर्भ विशेष की अभिव्यक्ति के रूप में ही देखा जाए।

आस्तिकता और नास्तिकता के झूले में झूलते हुए जो सभी सामान्य किन्तु संवेदनशील मनुष्यों के साथ होता है, मेरे सत्य संबंधी विचार बहुत स्पष्ट नहीं हैं। स्वयं के बारे में मुझे लगता है कि कभी एक जीव-पिंड पैदा हुआ जिसे प्रकृति और समाज क्रमानुसार गढ़ता गया, मारता-कूटता, निर्मित करता गया जो अन्तत: आज का अरुण (बल्कि शर्मा जी) बन गया। बिना इस बात को ध्यान में रखे कि अच्छाई संबंधी उसके विचार क्या हैं एक दिन मारकेस उसे मार देगा और सत्य-असत्य का निरर्थक, अनुत्पादक सारा झंझट भी समाप्त हो जाएगा। ऐसा कुछ नहीं रहेगा जो सत्य हो। अनुभवों ने एक बात जो मेरे दिमाग में भर दी है वह यह कि कुछ भी सत्य नहीं है। क्योंकि जो भी कहा जाएगा वह इस संसार में ही कहा जाएगा जो स्वयं एक असत है। संभवत: इसी लिए भक्त शिव की आराधना करता है और कहता है कि मात्र शिव ही संसार रूपी रोग की औषध हैं, कोई दूसरी औषधि नहीं है। तो क्यों न सहज जीवन, प्रेम, करुणा और मित्रता का जीवन ही जिया जाए। मैं आग्रह नहीं करूँगा कि ऐसा करना अच्छा किन्तु सहज है और इसके विपरीत के सारे विकल्प इससे भी कहीं अधिक असत्य हैं मेरा मन मुझसे ऐसा बार-बार कहता है। हो सकता है कि सिद्धान्त के रूप में मेरी यह धारणा गलत हो किन्तु आदर्श के रूप में इसके परिणाम अधिकांशत: सुखदपूर्ण ही निकले है। मैंने यदि कुछ पाया है तो उसमें धन, बुद्धि, नैतिकता, स्वस्थ शरीर, उच्च कुल आदि का महत्व कम उसके सापेक्ष प्रेम, करुणा एवं मित्रता का महत्व अधिक है। हाँ अनिश्चितताएँ अवश्य अनेकों हैं। प्राय: होता यही है कि लुटाया गया प्रेम दोगुना, तीन गुना होकर वापस आ जाता हैं जो कभी-कभी व्यर्थ भी चला जाता है, कभी प्रेम स्वयं उद्घाटित हो जाता है तो कभी कुछ भी नहीं होता।

हालाँकि लंबी अवधि में जीत उन्हीं की होती है जिन्होंने प्रेम को प्राप्त कर लिया है न कि उनकी जिन्होंने संसार को पा लिया है। हमारे देश के धर्म एवं उसकी संस्कृति में अनेकानेक मार्ग-उपमार्ग हैं; निर्गुण, सगुण, आस्तिक, नास्तिक आदि। इसी प्रकार भक्ति में भी राम आश्रित, कृष्ण आश्रित आदि। कुछ लोग कहते हैं कि आत्मा है वहीं कुछ लोग कहते हैं कि आत्मा नहीं है। यद्यपि उनमें से किसी ने भी आत्मा को उस प्रकार नहीं देखा है जैसे कि हम देख सकने लायक पदार्थों को देख पाते हैं या नेत्रों से न दिख पाने वाले सूक्ष्म कणों को सूक्ष्मदर्शी के माध्यम से देख सकते हैं। हो सकता है कि किसी ने देखा भी हो तथापि मुझे इन सब विषयों में प्रमाण पत्र देने का कोई अधिकार नहीं है। मैंने यदि कभी जानने की कोशिश की भी तो यही पाया कि प्राय: लोगों की जानकारी सही नहीं थी। उदाहरण के तौर पर मैंने लोगों को कभी-कभी अपने संबंधियों को मृत्यु के मुख से बचाने के लिए महामृत्युंजय कराने की बात करते देखा है और जब मैंने उसके बारे में पढ़ा तो समझा कि यहाँ तो ऋग्वेद का ऋषि कह रहा है कि जैसे ककड़ी अपनी लता से स्वत: अलग हो जाती है वैसे ही मैं अमृतत्व को प्राप्त करूँ।

यहाँ कहीं ककड़ी की लता से लगातार लिपटे रहने की प्रार्थना ही नहीं है। हमारे संबंधी हैं कि हमें अनर्थक ही रस्सियों के सहारे लता से बांधे जा रहे हैं। अच्छा जीवन तो यही है कि उस अज्ञात से प्राप्त सुगंधें और पौष्टिकता उसे वापस लौटाकर हम उसके काम आ जाएँ। अच्छा समाज तो वही है जिसमें हम समाज से प्राप्त सुगंधियों को समाज को सुगंधित करने के निमित्त समर्पित कर दें। मैंने सुना था कि अन्न ही ब्रह्म है। पढ़ने पर पता चला कि अन्न दो अलग-अलग अर्थों में ब्रह्म है। प्रथम, अन्न ही प्राण है और, दूसरे, हम स्वयं ब्रह्म का अन्न हैं। अर्थात् हम परिवर्तित होकर और मृत्यु को प्राप्त होकर ब्रह्म का पोषण करते हैं।

इस देश ने राहुल सांकृत्यायन का सही मूल्यांकन नहीं किया है। मेरी दृष्टि में अच्छे जीवन और अच्छे समाज का खाका, जो भारतीय चिंतन परंपरा से नि:सृत हो, उन्हीं के पास है। हिंदुओं ने उन्हें "बौद्ध" समझ लिया और बौद्धों ने साम्यवादी। वे एक ऐसे हिन्दू थे

जो वेदान्त के अनंत प्रवाह में जाकर घने बैठ गए और जिन्होनें सत्य के मुक्ति, भुक्ति तथा रक्षा तीनों पक्षों को लेकर चलने का प्रयत्न किया। उन्होंने उपनिषदों द्वारा वर्गीकृत विद्या या अविद्या, संभूति या असम्भूति में से किसी एक का वरण स्वीकार नहीं किया। वे एक सच्चे बौद्ध थे जिन्होनें मार्ग रोकने के लिए बुद्ध की हत्या करना भी अनुचित नहीं समझा। उनके अनुसार बुद्ध ने यह तो सही-सही जान लिया कि जीवन में दु:ख है परंतु सेठों और सामंतों की प्रतिक्रया के डर से वे यह नहीं कह पाये कि दु:ख मुक्ति में समाज परिवर्तन की एक प्रमुख भूमिका है। राहुल से हम सीख सकते हैं कि बोधिसत्व की अगली यात्रा के लिए सामाजिक एकता, समरसता और सहभागिता की लड़ाई नितांत आवश्यक है। अच्छा जीवन बंद कमरों या गुफाओं में नहीं है, बल्कि वह मानव कर्म के उचित मूल्यांकन के साथ जुड़ा है — और वर्तमान में जहाँ मनुष्य के ऊपर पूंजी का जबर्दस्त दबाव है, वहाँ वह न केवल राजनैतिक अपितु व्यवस्था परिवर्तन की चेतना का आह्वान मांगता है।

यद्यपि मैं अभी भी वर्तमान में पर-निर्भर, अलगाव के शिकार, मानव, परलोकवासी ईश्वर और उसके शोषण में सम्मिलित भविष्य वक्ताओं और चोटीधारियों के साथ संवाद अभी भी नहीं कर पा रहा हूँ पर इतना अवश्य समझ गया हूँ कि अमृत इस देश की लंबी आध्यात्मिक उपलब्धियों के समुद्र-मंथन से ही निकलेगा जो हिंदुओं को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। मुझे यह भी समझ आता है कि भारत की सभी धार्मिक और आध्यात्मिक परंपराओं के पीछे एक सामान्य सा भाव है — रामरक्षास्त्रोत में वर्णित - विपरीत प्रभावों से रक्षा, पापों में अलिप्ति, मुक्ति एवं भुक्ति। चाहे उपनिषद हों, पुराण हों, आस्तिकतावाद हो अथवा नास्तिकतावाद, व्यक्ति और समाज के स्तर पर हमें यही तो चाहिए - मर्यादित जीवन जो अपने आप में समृद्ध भी है तथा जीवन-मुक्त भी। इनमें से एक को भी कम कर दें तो बाकी दोनों खड़े नहीं रह सकते। बाकी सारे भेदभाव गौण हैं, मात्र बुद्धिजीवियों के मनो-विनोद के साधन। बाल्मीकि जब राम को सभी कारकों में बैठा देते हैं (उदाहरणार्थ, श्रीराम: शरणम ...) या जब महाकवि तुलसीदास भवानी और शंकर को श्रद्धा और विश्वास से जोड़ देते हैं, जो निरंतर राम के उपासक हैं, जिनके बिना स्वयं आत्मा में स्थित ईश्वर को सिद्ध भी नहीं देख पाते, तो मुझे निर्गुण, सगुण, सनातन धर्मियों, आर्य समाजियों और अन्यान्य मतावबलम्बियों के एकपक्षीय तर्क मूर्खों का दर्शन सदृश ही प्रतीत होते हैं। मुझे लगता है कि वेद का साक्षात्कार करने वाले ऋषि, साकार परम्पराएँ, निराकार परम्पराएँ, कबीर, नानक, जैन, इत्यादि सब एक ही बात को बार-बार दोहरा रहे हैं। मेरी समझ में तो अच्छे जीवन के यही अर्थ हैं: रक्षा या जिजीविषा, पापों से दूरी, मुक्ति एवं भुक्ति।

गांधीजी इसके भी एक कदम आगे जाते हैं। वे न केवल सभी भारतीय परम्पराओं की एकरूपता को साफ-साफ देख रहे हैं अपितु वो पश्चिम में भी दो दर्शनों में भेद कर रहे हैं: एक है "पश्चिमी" और दूसरा है "स्वदेशी"। ध्यान रहे कि पश्चिम का स्वदेशी भारत के स्वदेशी से उसी प्रकार अभिन्न है जिस प्रकार टोल्स्टॉय का दर्शन श्री अरविंद के दर्शन से या महाकवि टैगोर के अंतर्राष्ट्रीय दर्शन से। जिस पश्चिमी सभ्यता को वो पैशाचिक कहते हैं वह पश्चिम की सम्पूर्ण सभ्यता नहीं बल्कि औद्योगिक विकास से उपजने वाली सभ्यता है जिसकी उम्र उनके समय में लगभग दो सौ वर्ष की थी और जिसमें जीवित बने रहने की क्षमता नहीं दीखती थी। गांधीजी यह भी मानते हैं कि उद्योगों को मानवीय स्वरूप देना संभव है। इसी कारण से मैं जहाज के पंछी की तरह अच्छे जीवन और अच्छे समाज के चिंतन के लिए बार-बार गांधीजी और उनके प्रयोगों की ओर देखता आया हूँ। सर्वोदय के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए गांधीजी ने तीन बातें कही थीं। एक कि सबकी भलाई में ही अपनी भलाई है। दूसरे कि नाई और वकील के कार्यों का मूल्य समान है। तीसरी कि मजदूर-किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है। पहली दोनों बातें आज भी उतनी ही अर्थवान हैं जबकि तीसरी बात के लिए हम कह सकते हैं कि "अपने संदर्भों में प्राप्त अपना कार्य उत्तरदायित्व पूर्वक करना — चाहे वह घरेलू नौकरानी का हो या चाहे सिविल सर्वेन्ट का, ही सच्चा जीवन है।"

गांधीजी ने कहा था कि यदि हिंदुओं के समस्त साहित्य को भी समुद्र में फेंक दिया जाये और ईशोपनिषद/यजुर्वेद का एक श्लोक बचा लिया जाये तो कोई हानि नहीं होगी। यह श्लोक क्या है? इस श्लोक का अर्थ है—यह समस्त सत्ता ईश्वर का आवास है, त्याग पूर्वक भोग कर। इससे परे अच्छे जीवन का कोई अन्य सूत्र हो सकता है क्या?

भारतीय परंपरा के अनुसार अच्छा जीवन और अच्छा समाज एक ही सत्य के दो पहलू हैं। जीवन मर्यादित हो, सुखी और समृद्ध हो, किसी प्रकार का दु:ख न हो। पाप से अलिप्त, मुक्त और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन, यही तीन आदर्श हो सकते हैं और तीनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। उपनिषद कहते हैं कि जिस दिन मनुष्य आकाश को चमड़े की भांति लपेट सकेगा, उस दिन ईश्वर को जाने बिना भी वह दु:खों से मुक्त हो जाएगा। बुद्ध ने कहा कि जीवन में दु:ख है। एक देवी-भक्त ने कहा कि माँ अप्रसन्न हो तो कोई भी मनोकामना पूर्ण होना असंभव है। सब एक ही बात तो कह रहे हैं। अदृष्ट और दृष्ट, दोनों की साधना आवश्यक है। मुक्ति और भुक्ति दोनों आवश्यक हैं, लेकिन सामाजिक मर्यादाओं के साथ बिना असंगत हुए।

उपर्युक्त प्रस्ताव का नाम भी संभवत: योग दिया जा सकता है। इस जीवन और उस जीवन का योग, आस्तिकता और नास्तिकता का योग, संसार और संसारेत्तर का योग, धन और त्याग का योग, जीवन और मृत्यु का योग, व्यष्टि और समष्टि का योग वियोग और संयोग का योग, उदासी और अतिरेक का योग तथा विज्ञान और आत्मा का योग। मेरी दृष्टि में यही अच्छा जीवन है और जिस समाज का जीवन अच्छा हो, वही अच्छा समाज है। •

प्रो. अरुण कुमार शर्मा

दिसंबर का अंतिम सप्ताह है और ठण्ड अपने चरम पर है। संध्या का समय है और मोटे-मोटे कपड़ों में सर से पैर तक छिपे हुए वर्मा जी एक थैला लिए चले आ रहे हैं। हालचाल पूछने पर थैले में पड़ी हुयी शराब की बड़ी सी बोतल की ओर इशारा करते हुए बोले, आज तो पूरी पी जाऊंगा। अपने नियंत्रण के गर्व का प्रदर्शन करते हुए मैंने उन्हें छेड़ा "मजा लेना है पीने का तो कम-कम, धीरे-धीरे पी, चलेगा उम्र भर पीने का मौसम धीरे-धीरे पी"। पुराने खिलाड़ी वर्मा जी कहाँ कम थे, नहले पर दहला पटकते हुए बोले "आज अँगूर की बेटी से मुहौब्बत कर ले, शेख साहब की नसीहत से बगावत कर ले, हर नज़र अपनी बसद शौक गुलाबी कर दे, इतनी पी ले के जमाने को शराबी कर दे।" ठण्ड का मौसम है और यदि आप सोच रहे हैं कि इन दूसरे वाले शायर साहब ने तो एकदम से मन की बात बोल दी है तो आप बेशक सोच सकते हैं क्योंकि सोच पर पहरा तो बैठाया नहीं जा सकता। लेकिन थोड़ा अच्छे से सोच-विचार कर लीजिए क्योंकि पहला शायर काफी गहरा प्रतीत हो रहा है और संभवत: उसने बड़ी ही चतुराई से ये पंक्तियाँ गढ़ कर, श्रोता या पाठक पर ही छोड़ दिया है कि वो किन अर्थों में इसे प्रयुक्त करेगा। यदि हम अपने सम्पूर्ण जीवन की तुलना एक मद्य-पात्र से करें तो ये पँक्तिया ज्यादा सटीक मालूम होती हैं। जीवन मद्य का एक ऐसा पात्र है जिसमे आनंद भी है और कष्ट भी।यदि हमारी सोच एवं सारे यत्न-प्रयत्न मजा-मौज और प्रदर्शन की आधुनिक जीवन-शैली तक ही सीमित हैं और एक इंसान के रूप में हम अपने दायित्वों से मुंह मोड़े हुए हैं तो जीवन रूपी इस मद्य-पात्र में से आनंद का कोटा हम शीघ्र ही समाप्त कर चुकने वाले हैं और शेष जीवन में क्या बचने वाला है कहने की आवश्यकता नहीं। जब हम सुख की चाहत में अतिवादी हो जाते हैं और इसे जीवन का एकमात्र मकसद बना लेते हैं तो एक छोटे से कष्ट के लिए भी हम अत्यधिक संवेदनशील हो जाते हैं अर्थात हम इन्हें सहन करने की शक्ति खो देते हैं। और चाहे कोई राजा हो या रंक, दु:खों का सामना तो सभी को करना है क्योंकि जीवन "सुख" और "दु:ख" का एक सम्मलेन है। जीवन के इन दोनों अहम् घटकों में से कोई भी कभी भी प्रवेश कर सकता है और दोनों के प्रति सहज भाव रख पाना ही शायद जीवन जीने की कला है।

आज की विडम्बना यही है कि इसी निरंकुश और स्वच्छंद जीवन की राह पर हमारा समाज तेजी से आगे बढ़ रहा है। आज हम एक ऐसे समाज की और अग्रसर हैं जिसमें जल्दी से जल्दी और येन-केन-प्रकारेण सब कुछ हासिल करने की होड़ है चाहे इसके लिए छल, बल या अन्य अनैतिक कृत्यों का सहारा ही क्यों न लेना पड़े। जैसे-जैसे हम अगली पीढ़ी की और बढ़ रहे हैं, मानवीय मूल्य और सिद्धांत की बातों को हम व्यर्थ की बकवास समझते हुए स्वच्छंदता की राह पर अग्रसर हो रहे हैं। चकाचौंध के इस दौर में अर्थ-तंत्र और मद-तंत्र आच्छादित होता जा रहा है। आज का युवा वर्ग तो एक कदम और आगे है। उसे रोक-टोक बिलकुल पसंद नहीं। मानवीय-मूल्य और सिद्धांत की बातें उसे तर्कहीन और अवैज्ञानिक प्रतीत होती हैं और हों भी क्यों न, उसे तो समय के अनुरूप आधुनिक-विज्ञान सम्मत प्रामाणिकता चाहिए।

इस अंधी होड़ के दुष्परिणाम भी दिखाई दे रहे हैं किन्तु चकाचौंध की मृगतृष्णा में हम इन्हें अनदेखा करते हुए स्वयं को नियंत्रित कर पाने में पीढ़ी दर पीढ़ी अक्षम होते जा रहे हैं। जहां आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी के उपयोग से हमें स्वास्थ एवं समृद्धि की ओर अग्रसर होना चाहिए वहाँ स्थिति विपरीत साबित हो रही है। डिजिटल आंकड़ों के अनुसार संक्रामक, असंक्रामक एवं आकस्मिक दुर्घटनाओं से सम्बंधित मृत्युदर में हम धरती के बेहद पिछड़े हुए देशों में आते हैं। यदि हम यह सोचकर स्वयं को तसल्ली देने का प्रयास करें कि इसके पीछे हमारी विशाल जनसंख्या है तो हमें एक तथ्य अवश्य जान लेना चाहिए कि चीन, जहां विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या है वहां मृत्युदर के ये आंकड़े हमसे बहुत कम है। जब चीन की बात आयी है तो हमें यह भी देखना चाहिए कि हम अपने बच्चों के मन-मस्तिष्क, एवं देश की अन्य आवश्यकताओं को पास रहकर भी नहीं पढ़-समझ पाते और वो हमसे दूर होकर भी हमारी आवश्यकताओं को, हमारे बच्चों के मनोविज्ञान को भाँप कर राखी, पिचकारी एवं तरह तरह के खिलौने एवं दीवाली की लाईट जैसी अनेकों प्रकार की सामग्री का सस्ता निर्माण कर पाने में न केवल सक्षम हो रहे हैं बल्कि हमें आश्रित या स्पष्ट शब्दों में गुलाम बनाते जा रहे हैं। कहीं की ईट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा की तर्ज पर विभिन्न देशों से कलपुर्जे एकत्र कर मात्र असेम्बली करते रहने की मिथ्या वैज्ञानिक प्रगति का बखान हम कब तक करते रहेंगे?

अब यदि चीन की इस बढ़ती हुयी शक्ति को समझने की कोशिश करें तो विभिन्न रिपोर्टों के माध्यम से स्पष्ट होता है कि वहाँ का प्रशासन अत्यधिक सख्त है और चीन की इस बढ़ती हुयी ताकत के पीछे श्रम-शोषण का बहुत बड़ा हाथ है। अर्थात वहाँ मानवीय संवेदनाओं को पर्याप्त वरीयता नहीं दी जाती एवं शोषण के विरोध में आवाज उठाना बेहद जोखिम से भरा होता है। इसके विपरीत हमारे देश में हम न सिर्फ कुछ भी बोल देने बल्कि कहीं भी खड़े होकर विरोध के स्वर उठाने को स्वतंत्र रहते हैं। प्रश्न उठता है कि दोनों तरीकों में कौन ज्यादा सही है? निश्चित रूप से तरक्की और ताकत के लिए मानवीय संवेदना को ताक पर रखना उचित नहीं है क्योंकि इससे तात्कालिक सफलता तो मिल सकती है किन्तु समय के साथ इस शोषण के क्रान्तिक सीमा पार कर लेने पर घातक परिणाम अवश्यम्भावी हैं।

इस दृष्टिकोण से हम भाग्यवान हैं कि हम एक बेहतर देश में हैं जहां पहले तो इस तरह के शोषण तुलनात्मक रूप से नहीं के बराबर हैं

वहीं हमें बोलने एवं विरोध प्रकट करने की खुली छूट भी है। इसके साथ ही एक तथ्य भी उभर कर आता है कि क्यों हमारा समाज पथ-भ्रष्ट होने की राह पर अग्रसर है और यह तथ्य है "आजादी का दुरुपयोग।" पिछले कुछ दशकों में इस दुरुपयोग ने हमारे समाज पर इतना बुरा असर डाला है कि यह कहना बेजा नहीं होगा कि शायद हम गुलाम रहकर ही सही चल सकते हैं। बैल को यदि स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो वह स्वत: खेत नहीं जोतेगा बल्कि इधर उधर घूमकर अपना समय व्यतीत करेगा साथ ही एक व्यवस्थित दिनचर्या से हट जाने के कारण स्वयं को जोखिम में भी डाल लेगा। इसलिए उसे बांधकर रखने में ही उसका भी भला है और किसान का भी। अर्थात स्वतन्त्रता केवल वहाँ सार्थक है जहां विवेक है, जहां मानवीय मूल्य हैं और सिद्धांत हैं। एक ठेले या रिक्शे पर भार ढोते हुए व्यक्ति को रोककर पहले अपनी गाड़ी को निकालना मानवता नहीं प्रतीत होती क्योंकि वहाँ एक श्रमिक की शारीरिक मेहनत लगी हुयी है जबकि हम मशीन का उपयोग कर रहे होते हैं। ये मानवीय मूल्यों की अवहेलना का एक छोटा सा उदाहरण है और इस तरह की अनेको घटनायें आज हमारे देश में आम हो चुकी हैं।

विद्यालयीन शिक्षक जो कच्ची मिट्टी रूपी बालकों को गढ़ने का काम करते हैं, किसी राष्ट्र के निर्माण का बहुत बड़ा अंग होते हैं। आज गाँव-गाँव में स्कूल तो बन रहे हैं लेकिन शिक्षा का स्तर अति चिंतनीय है। इन शिक्षकों को अपने विषय के अतिरिक्त जहां मानवीय मूल्यों और सिद्धांतों के प्रति अति संवेदनशील होना चाहिए, विवेकशील होना चाहिए, वहां इनका चयन मात्र राजनैतिक हो गया है। इस महत्वपूर्ण पद की गरिमा इस हद तक गिर चुकी है कि योग्यता के मानदंडों को ताक पर रखकर ये चयन अब परिवर्तनशील सरकारों की राजनीति का हिस्सा बन चुके हैं। शेष कसर ग्राम प्रधान और जागीरदारों की स्थानीय राजनीति के द्वारा पूरी कर दी जाती है। इन गावों को जहां हमारी पुरातन तकनीकी व परम्पराओं एवं आधुनिक विज्ञान के समन्वय से विश्व के श्रेष्ठतम मॉडल के रूप में विकसित किया जा सकता था वहाँ अब इतनी विषम स्थितियां निर्मित हो चुकी हैं कि ग्रामीण शहरों की ओर पलायन करने को बाध्य हैं। आज दबंगों का साम्राज्य है जो हर ओर से अपना हित साधने में लगे हैं। उनसे कोई बैर भी नहीं लेना चाहता क्योंकि उन्हें राजनैतिक संरक्षण हासिल है। छोटे-छोटे बच्चे भी अब आधुनिक जीवन शैली की स्वच्छंद राह पर चल रहे हैं। बड़ों का सम्मान आदि बातें अब पुरानी हो चुकी हैं। आपसी भरोसा और भाईचारा अब समाप्त होता जा रहा है।
ब्रिटिश लोगों ने तो केवल हिंदू और मुस्लिम के बीच फूट पैदा कर शासन करने की नीति अपनाई थी, हमारे अपने जननायकों ने तो समस्त जातियों को ही राजनीतिक समीकरणों में इस तरह उलझा दिया है कि किसी जातिविशेष-बाहुल्य क्षेत्र में दूसरी जाति के किसी अल्पसंख्यक का टिक पाना आसान नहीं। आज न्याय पाना इतना कठिन है कि व्यक्ति की मेहनत का अधिकाँश पैसा न्याय पाने की आस में आधुनिक न्याय व्यवस्था के आधार-स्तम्भ, वकीलों की भेंट चढ़ता जाता है। सुचारु न्याय-व्यवस्था देश की रीढ़ कही जा सकती है जिसके प्रमुख किरदार होते हैं वकील। नैतिक दृष्टिकोण से यह पद अति विशिष्ट है जिसे शिक्षकों की भांति ही मानवीय मूल्यों और सिद्धांतों के प्रति संवेदनशील होने के साथ साथ बुद्धिमान एवं न्यायप्रिय होना चाहिए किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत ही है। ऐसे वकीलों की संख्या बहुत कम है जिन्होंने निष्ठा-पूर्वक इस क्षेत्र में कदम रखा हो। अधिकाँश तो रोजगारपरक मजबूरी के चलते इस क्षेत्र में आ जाते हैं। आज देश में इस तरह के वकीलों की भरमार है जो न्याय दिलाने के नाम पर न्याय व्यवस्था को और उलझा रहे हैं। यदि हम अपनी पुरातन न्याय प्रक्रिया से इसकी तुलना करें तो पाते हैं कि उस समय भले ही बड़े बड़े कानूनी ग्रन्थ नहीं थे, किन्तु वो आधुनिक न्यायिक व्यवस्था से ज्यादा कारगर थी क्योंकि इसके पीछे नैतिक मूल्य और सिद्धांत थे। न्याय करते समय पंच अपने अंदर समाये हुए मानव को देख पाने में सक्षम था। आधुनिक न्याय व्यस्था के ग्रन्थ तो मोटे-मोटे हैं जिनका अध्ययन एवं उत्तीर्ण कर दंडनायक तो उत्पन्न होते हैं लेकिन न्यायप्रियता का भाव बेहद फीका नजर आता है। कुछ बड़े न्यायालयों को छोड़ दें तो देश के अधिकाँश न्यायालय स्वयं भ्रष्टाचार का शिकार हो चुके हैं जहां पचीसों वर्षों तक निर्णय का इंतजार इन्हें न्याय की नहीं, बल्कि अन्याय की आस लिए व्यक्तियों के लिए ज्यादा मुनासिब बनाता है।

आज भारत में इसरो जैसे कुछ एक विकल्पों को छोड़कर अन्य सभी विभागों की गति चिंतनीय है। यहां उत्साह एवं इच्छाशक्ति की अत्यधिक कमी दिखाई पड़ती है। भ्रष्टाचार का स्तर इतना बढ़ चुका है कि नियम-कानून इसके आगे दम तोड़ते नजर आते हैं। प्रशासनिक व्यवस्था इतनी लचर हो चुकी है कि विकसित देशों में बैन हो चुकी वस्तुएं, दवाईया आदि एक बार हमारे देश में मार्केट बना लेने पर फिर कभी बंद नहीं हो पाती। ड्रग, खनन, बिल्डिंग इत्यादि माफियाओं ने ऐसी धौंस जमा रखी है कि बड़े से बड़े स्तर के चंद ईमानदार अधिकारी भी इन पर हाथ डालने से कतराते हैं या फिर दबा दिए जाते हैं। शहरों की प्लानिंग जो कम से कम 100 वर्षों तक अग्रिम होनी चाहिए ऐसी चरमराई हुयी है कि रोज गड्ढे खोदकर पाइप-लाइन ठीक की जाती है। जहां विकसित देशों के लोग आज बढ़ते प्रदूषण और समाप्त होते जीवाश्म ईंधन से चिंतित होकर पैडल-सायकल चलाने में गर्व महसूस करते है वहीं हम बड़ी से बड़ी गाड़ी खरीद कर प्रदर्शन करने में गर्व महसूस करते हैं। आज अव्यवस्थित यातायात,

चौतरफा जाम, दुर्घटनाएं, बढ़ते प्रदूषण एवं इससे उत्पन्न बीमारियों के रूप में भयावह परिणाम हमारे सामने हैं। अधिकाँश मामलों में हम आधुनिक-विज्ञान का लाभ बहुत कम ले पा रहे हैं, इसका दुरुपयोग कर हानि ज्यादा उठा रहे हैं। इससे देश के चंद लोगों को तो लाभ हो सकता है किन्तु एक बहुत बड़े वर्ग का अहित है। हम आज पाकिस्तान, बांग्लादेश या नाइजीरिया जैसे कुछ दक्षिण-अफ्रीका के देशों की तुलना में थोड़े-बहुत उन्नत तो हो सकते हैं किन्तु विकसित देशों की तुलना में अत्यंत पीछे जा चुके हैं। भारतीय मुद्रा का तेजी से हुआ अवमूल्यन इसका सीधा सा प्रमाण है। सन 1917 में 1 रुपया 13 अमेरिकन डालर के समकक्ष था जबकि आज 2017 में 1 अमेरिकन डॉलर 64 रुपये के समकक्ष हो चुका है।

इन विषम परिस्थितियों के मध्य यदि हमें स्वयं को उबारना है, पुनः एक श्रेष्ठ भारतीय समाज की ओर जाना है तो अपनी इन कमजोरियों का अवलोकन करना ही होगा। इस तथ्य को हमेशा ध्यान रखना होगा कि स्वतन्त्रता विवेकशील समाज के लिए ही सारगर्भित है विवेकहीन समाज के लिए नहीं विवेकहीन समाज को स्वतंत्र कर देने पर वह अपना अहित ही करेगा। हमें अपने अन्दर के इंसान को जगाना होगा एवं मिली हुयी स्वतन्त्रता का सम्मान करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में इसका दुरुपयोग रोकना होगा। सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि हम मानवीय मूल्यों और सिद्धांतों को पहचानें, जिनकी हम लगातार उपेक्षा कर रहे हैं। जापान जैसे देशों से हमें सीखना चाहिए जिन्होंने विषम स्थितियों से स्वयं को न सिर्फ उबार लिया बल्कि आज विकसित देशों में शुमार है। जहाँ हमारी मुद्रा का लगातार अवमूल्यन हुआ वहीं जापान के युआन ने बढ़त हासिल की। आज जापान विभिन्न देशों को "शिंका लीन मैनेजमेंट" जैसी गुणवत्ता एवं सम्बन्ध आधारित ट्रेनिंग प्रदान करता है और वास्तव में जिन मूल्य और सिद्धांतो की बातें इसमें बतायी जाती हैं वे दरअसल हमारे प्राचीन ग्रंथों पर आधारित हैं। कहने का आशय यह है कि हम अपने जिस आध्यात्मिक दर्शन को सिरे से नकार देते हैं वहां तमाम विज्ञान-परक बातें छिपी हुयी हैं। और हमें एक बार पुनः इस वैदिक ज्ञान पर विवेकपूर्ण दृष्टि डालने की आवश्यकता है। यह न केवल गणितीय विज्ञान, भाषा विज्ञान, भौतिक विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, जीव विज्ञान, धातु विज्ञान एवं आयुर्वेद के रूप में स्वास्थ्य विज्ञान का आधार स्तम्भ है बल्कि समाज विज्ञान, मनोविज्ञान एवं जीवन को खुशहाल रखने आदि के विज्ञान को भी समाहित करता है। धैर्य, क्षमा, आत्मनियंत्रण, संतोष, सत्यनिष्ठा, मानवीय मूल्य एवं सिद्धांत इत्यादि जिन बातों को आज हम कचरा समझ कर दूर कर दे रहे है, वास्तव में एक स्वस्थ, प्रसन्नचित्त एवं शक्तिशाली समाज की स्थापना करने वाला परम विज्ञान ही है जिस तक आधुनिक विज्ञान को पंहुचने में अभी काफी समय लगेगा। इसके कुछ एक सूत्रों को ही पकड़कर आज विकसित राष्ट्र अपने लक्ष्य तक पंहुच सके हैं।

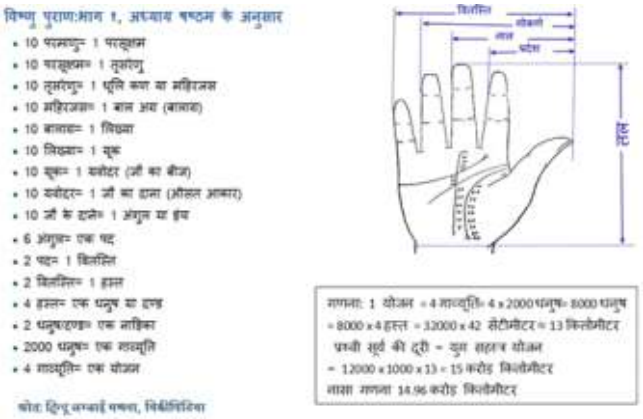

इस पुरातन विज्ञान को हम आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर परखने के लिए कुछ उदाहरण ले सकते हैं। तुलसीदास जी द्वारा रचित इस चौपाई "जुग सहस्त्र जोजन पर भानू, लील्यो ताहि मधुर फल जानि" का अर्थ है कि 15 करोड़ किलोमीटर दूर स्थित सूर्य (युग =12000, सहस्त्र =1000 एवं योजन ≈13 किलोमीटर) को हनुमान जी ने मीठा फल जानकर निगल लिया। नासा के द्वारा बतायी गयी पृथ्वी और सूर्य के मध्य की दूरी भी इतनी ही है। 1 योजन की दूरी को आप स्वयं आधुनिक पैमाने में परिवर्तित कर सकते हैं जिसके लिए पुराणों पर आधारित चित्र इस लेख में दिया गया है। यह 13.5 किलोमीटर के लगभग आती है। तुलसी दास जी बहुत पुराने नहीं हैं। वे मात्र 600 वर्ष पूर्व हुए हैं। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अपनी रामायण में उन्होंने वेदों एवं पुराणों से ही सामग्री जुटाई थी जो इतने पुरातन है कि इनका काल निर्धारण भी असंभव है। पहले श्रुति से आया वैदिक साहित्य/विज्ञान आगे चलकर महर्षि वेदव्यास आदि के द्वारा लिखा गया। एक बार को आप इसे कपोल कल्पित समझ सकते हैं किन्तु यदि आप सत्यता को परखना चाहें तो विष्णु पुराण खोल सकते हैं जिसके द्वितीय अंश के अध्याय सप्तम के कुछ प्रारंभिक श्लोकों से आपकी शंका तत्काल दूर हो जायेगी। विष्णु पुराण के ही प्रथम अंश के षष्टम् अध्याय में दूरी मापन की सबसे छोटी इकाई परमाणु से लेकर सबसे बड़ी इकाई योजन तक का वर्णन मिलता है, जो न सिर्फ रोमांचित करने वाला है बल्कि इसके समुचित अध्ययन के लिए प्रेरित भी करता है (चित्र देखें)। नैनो से लेकर खगोलीय दूरी मापन के क्षेत्र में जहां आधुनिक विज्ञान आज पंहुचा है वहीं वैदिक विज्ञान हमें इससे भी आगे ले जाता है।

एक दूसरे उदाहरण के रूप में हम आयुर्वेद की एक सर्वत्र-सुलभ औषधि "भूमि-आमला" को ले लेते हैं। इसका लैटिन नाम

फिलैंथस-निरूरी है। इसे आयुर्वेद के श्लोकों में लीवर-रोगों की एक प्रमुख औषधि बताया गया है। यह एक ऐसा पौधा है जो सम्पूर्ण भारत में मई से नवंबर तक बहुतायत में होता है। पौधा 1-1.5 फिट तक लंबा होता है जिसके इमली के समान पत्तों के नीचे की ओर छोटे छोटे आमलों के समान बीज होते हैं। 15-16 यूनिट तक बढ़े हुए बिलरुबिन के स्तर को जहां व्यक्ति मरणासन्न हो चुका होता है, यह एक सप्ताह में ही सामान्य कर देता है। आज विश्व के अधिकाँश व्यक्ति हैपेटाईटिस-बी के संक्रमण के कारण जान गँवा रहे हैं। इसका आधुनिक इलाज एवं टेस्ट इतने मंहगे है कि भारत के अधिकांश व्यक्ति इसके चक्कर में अपना सब कुछ लुटा देते हैं। भूमि आमला इसका भी एक अत्यंत कारगर इलाज है। लेकिन एक बहुत बड़ी आबादी इन बातों से अनजान है। आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि हैपेटाईटिस बी के वायरस को खोजने एवं नोबल प्राइज जीतने वाले जर्मनी के डॉ. बी. एस. ब्लमबर्ग ने स्वयं इस भूमि-आमला के द्वारा अपने रोगियों पर परीक्षण कर बड़ी सफलता प्राप्त की है। तसल्ली करने हेतु आप इस कार्य से सम्बंधित एक रिसर्च पेपर जिसमें उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों के साथ मिलकर काम किया है देख सकते हैं (Thyagarajan, S-P-, et al- "Effect of Phyllanthus amarus on Chronic Carriers of Hepatitis B Virus-" The Lancet-Oct- 1988 2:764&766-) ।

उपरोक्त उदाहरण वैदिक विज्ञान जिसमे ब्रह्मांड के तमाम रहस्य समाये हुए हैं, के सागर में छिपी हुयी चंद बूंदों के समान है। इनसे स्पष्ट होता है कि धैर्य, क्षमा, आत्मनियंत्रण, संतोष, सत्यनिष्ठा, क्रोध न करना, मानवीय मूल्य एवं सिद्धांत इत्यादि वास्तव में पूर्णत: वैज्ञानिक कारक ही हैं जिनकी उपेक्षा के दुष्परिणाम शारीरिक रोगों के रूप में सामने आ सकते हैं। अच्छा होगा कि देश के बुद्धजीवी लोग एवं तमाम वैज्ञानिक इसे इसकी ही भाषा संस्कृत के माध्यम से एवं एक नए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ पुन: समझने का प्रयत्न करें क्योंकि देव-भाषा संस्कृत से विभिन्न भाषाओं में हुए इसके अनुवाद में विभिन्न त्रुटियाँ होने की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। संस्कृत, जिसकी वैज्ञानिकता को आज सारा विश्व समझ चुका है एवं सीखने के प्रयास कर रहा है, उसे सम्पूर्ण भारत की भाषा बनाने के प्रयास किये जाने चाहिए जो वैदिक विज्ञान के इस गूढ़ रहस्य को समझने के लिए आगामी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

आज हम परिवर्तन के एक बड़े दौर से गुजर रहे हैं जिसने हमारे समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। परिवर्तन के दौर को रोका भी नहीं जा सकता क्योंकि वैदिक नियमों के अनुसार परिवर्तन ही संसार का नियम है। यद्यपि समाज का एक बड़ा वर्ग इस परिवर्तन का घोर विरोधी भी दिखाई देता है और कुछ अतिवादी लोग समय समय पर इसे रोकने के नाकाम प्रयत्न भी करते रहते हैं। उनका ये निरर्थक कार्य सारगर्भित हो सकेगा यदि वे शक्ति प्रदर्शन के स्थान पर अध्यात्म के इस परम विज्ञान को आधुनिक विज्ञान सम्मत एवं तार्किक विवेचना के आधार पर युवा वर्ग को प्रेषित करें। कलयुग के इस दौर को बदलना तो संभव नही है किन्तु इन प्रयासों के माध्यम से एक छोटे से वर्ग को ही सही, एक दिशा तो दी जा सकती है। हमारे पुरातन वैदिक विज्ञान में छिपे गूढ़ रहस्यों को पुनः समझने प्रयास करने के स्थान पर यदि हम इसका उपयोग मात्र आर्थिक, अंध-विश्वास परक या फिर राजनीतिक हित साधने हेतु करते रहेंगे तो बहुत संभव है कि कुछ कर्मण्य एवं विकसित राष्ट्र इस दिशा में भी आगे बढ़ जाएँ और हम हमेशा की भांति लकीर पीटते रहें कि यह ज्ञान तो हमारे देश का है।

महर्षि पराशर द्वारा प्रणीत एवं अट्ठारह पुराणों में अत्यंत प्राचीन विष्णु पुराण बहुत ही वृहद है जिसमें ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के आदि कारण भगवान विष्णु, आकाश, समुद्र, सूर्य आदि का परिमाण, ज्योतिष, काल-गणनाओं, भूगोल, कर्मकांड, कृषि, सागरों, लोकों के वर्णन इत्यादि के साथ-साथ स्वस्थ एवं सुखमय जीवन और शक्तिसंपन्न समाज के निर्माण हेतु बहुत उपयोगी जानकारी उपलब्ध है। यदि हम कुछ ज्यादा न करके जीवन जीने के कुछ-एक वैदिक मानदंडों को ही अपना लें तो एक नए एवं उन्नत समाज की स्थापना कर सकते हैं और आधुनिक विज्ञान के सदुपयोग के साथ-साथ विश्व को एक नयी दिशा दे सकते हैं।

आज हमने अपनी कर्मण्यता के द्वारा इसरो जैसे उपक्रम को एक मुकाम पर पंहुचाया है। हमारे प्रतिभावान छात्र विकसित देशों में जाकर बेहतर काम करते हैं। आज प्रतिभा पलायन को रोकने के उचित प्रयासों के साथ साथ उन्हें देश में ही स्वस्थ, अनुकूल, पारदर्शी, कानूनी पेचीदगियों से रहित एवं मानवीय मूल्यों से युक्त वातावरण प्रदान करने की आवश्यकता है। चयन प्रक्रियाओं को आधुनिक तकनीक के माध्यम से पारदर्शी बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि सुयोग्य अभ्यर्थियों का चयन सुनिश्चित किया जा सके। तमाम लूट-खसोट के एनजीओ के स्थानों पर ऐसे सेवा संस्थानों की आवश्यकता है जो मानवीय मूल्य एवं सिद्धांतों की वैज्ञानिकता को ईमानदारी के साथ प्रेषित कर सकें।

जिंदगी बहुत छोटी है। उसमें भी हम तमाम छल और प्रपंचों के जरिये अंत में कठिनाइयों के अलावा और कुछ नहीं हासिल कर सकते। इन प्रपंचों में ज्यादा उलझने की अपेक्षा अपने काम के सच्चे निर्वहन के साथ उसे ईश्वर को अर्पण कर देना ही ज्यादा सुखदायी है। एक छोटा

बच्चा अपने लिए दिमाग नहीं लगाता फिर भी उसका ध्यान रखने के लिए कोई न कोई हमेशा होता है। हमारा जीवन भी इस छोटे बच्चे की तरह ही होना चाहिए कि जो कार्य ईश्वर ने सौंपा है उसे यत्नपूर्वक करते रहें और शेष उस पर ही छोड़ दें। वो हमारी सहायता करता रहेगा। यदि हम छल प्रपंच का उपयोग करना प्रारम्भ करेंगे तो उसकी दृष्टि में हम बड़े हो जायेंगे और वो हमें हमारे हाल पर ही छोड़ देगा। आइये, अपने मन का वो काम करें जिन्हें हमनें अपने प्रयत्नों से पाया है। आइये, अपने अन्दर के इंसान को खोजें जिसे समय काटने में नहीं, हमेशा कुछ करने में आनंद आता है। ईमानदारी और मेहनत से काम करें और देखें कि इसके परिणाम ज्यादा सुखद, मानसिक सुदृढता देने वाले और परिणामतः शारीरिक स्वास्थ को बढ़ाने वाले हैं या नहीं। आइये सफलता की सोच से दूर कार्य करने में आनंद लेना सीखें क्योंकि आनंद सफलता के मार्ग में ही है। सफल होने के बाद तो शिथिलता होती है। आइये, बच्चे बनकर सीखें क्योंकि यदि अपने को बड़ा मान बैठे तो सीखना भी बंद हो जाएगा और मन से भी वृद्ध हो जायेंगे।

आज निंदा रस समय व्यतीत करने का एक बड़ा साधन बन गया है। ए, बी, सी, डी और ई व्यक्तियों के समूह में जो भी अनुपस्थित होता है, वही निंदा का पात्र बन जाता है। जो उपस्थित होते हैं उन्हें कभी इस बात का एहसास नहीं होता कि उनकी अनुपस्थिति में उनका भी यही हाल होने वाला है। इसमें आनंद तो है लेकिन अच्छा है कि इसे सीमाबद्ध किया जाए और शेष समय किसी अच्छी परिचर्चा में बिताया जाए जो हमारे इंसान होने की सार्थकता को सिद्ध करेगा साथ ही कुछ ज्ञान भी देगा। वैसे ज्यादा सार्थक तो यह है कि हम दूसरों की कमियों को देखने के स्थान पर स्वयं की कमियों की पहचान करते हुए उन्हें धीरे धीरे दूर करने का प्रयास करें, जो एक उत्तम समाज की रचना के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

समय-समय पर विभिन्न अवतारों, तपस्वियों ने आकर बड़े ही कम शब्दों में सार्थक बातें कह दी हैं। आइये आपको ले चलते हैं मध्य प्रदेश स्थित एक छोटी सी नगरी पन्ना, जो हीरे की खानों एवं टाइगर रिजर्व के लिए तो प्रसिद्ध है ही, साथ ही साथ यहाँ के प्राचीन मंदिरों की भव्यता अविस्मरणीय है। इन्ही मंदिरों में से एक है स्वामी प्राणनाथ जी का मंदिर। जब आप मंदिर के प्रांगण में स्थित होते हैं तो इसकी मन्त्रमुग्ध करने वाली भव्यता के बीच ही आपको सुनाई देते हैं भगवान श्रीकृष्ण के भजन। और इन भजनों के मध्य सुनायी देता है एक ऐसा भजन जिसकी स्वर लहरी में मानो ईश्वर स्वयं इस प्रांगण में अवतरित हो जाते हैं। यह भजन, जिसकी शीर्षक पंक्ति है "पहले आप पहचानो रे साधो" स्वयं स्वामी प्राणनाथ जी द्वारा रचित है। वास्तव में एक उत्कृष्ट जीवन जीने की सम्पूर्ण कला को व्यक्त करता यह छोटा सा वाक्य आज के परिवेश में अत्यंत प्रासंगिक है। जहां इसका एक सरल एवं सुस्पष्ट आशय है कि दूसरों के अवगुणों, खामियों, विकारों को देखने में समय व्यतीत न करते हुये स्वयं का ही विश्लेषण कर आत्म-सुधार क्यों न कर लिया जाए वहीं दूसरा गूढ़ अर्थ हमें यह बोध कराता है कि हम जानवर नहीं मनुष्य हैं और स्वयं को पहचानने की आवश्यकता है। जब हम अपने अंदर छिपे हुए मानव को पहचानने में सफल होंगे तभी समाज और देश को स्वस्थ, प्रसन्नचित्त एवं शक्तिशाली बना सकेंगे।

सोमनाथ डनायक

भगवान महावीर के शिष्य आध्यात्मिक चर्चा कर रहे थे। चर्चा चली कि मनुष्य के अधोपतन का मुख्य कारण क्या है; किसी शिष्य ने कामवासना, किसी ने अहंकार तो किसी ने ईर्ष्या-द्वेष को मुख्य कारण बताया। कोई निष्कर्ष निकलता न देख, वे अपना प्रश्न लेकर भगवान महावीर के सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान महावीर ने उन्हें अपना कमंडलु दिखाते हुए कहा-शिष्यों यदि मैं इसे जल में डाल दूँ तो क्या यह डूबेगा; उत्तर ना में मिला। भगवान ने फिर पूछा- यदि इसमें छेद हो तो क्या यह डूबेगा; इस बार सबने हाँ में उत्तर दिया। तब भगवान महावीर बोले-शिष्यों, स्मरण रखो कि मानव जीवन भी कमंडलु के समान है। यदि इसमें दुर्गुण रूपी एक भी छेद हो जाए तो उसका अधोपतन निश्चित है, फिर चाहे वह दुर्गुण कोई भी क्यों न हो।

भगवान महावीर

मेरी और हमारे संस्थान की इस प्रिय साहित्यिक पत्रिका अंतस में लिखने का अवसर मिलना मेरे लिए हमेशा सौभाग्य की बात होती है। इसलिए जब मुझसे इस बार लिखने को कहा गया तो मैं काफी खुश हुआ, हालाँकि खुशी के साथ जैसा कि अक्सर होता है जब विषय बताया गया तो खुशी एक पशोपेश में बदल गयी। 'आदर्श जीवन' पर मैं या फिर कोई भी बिना उपदेशात्मक प्रतीत हुए क्या लिख सकता है? और अपने वास्तविक अनुभव से आदर्श जीवन पर कुछ भी कहना थोड़ा अटपटा जरूर है। पर मैं प्रयत्न करता हूँ, और उम्मीद करता हूँ कि पाठक मेरी भूल-गलती को क्षमा करेंगे।

आइये तो फिर इस विषय पर अपनी बात को आगे बढ़ाते हैं।

आदर्श क्या होते हैं? आदर्श जीवन से क्या प्रयोजन है? और आज के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर क्यों बात करनी चाहिए ?

आदर्श शब्द का अर्थ अगर किसी भी शब्दकोष में खोजियेगा तो पाइयेगा कि इसके कई मायने है, जिनमें से अधिकांश किसी भी प्रकार की सर्वोत्कृष्टता की तरफ इशारा करते हैं। आदर्श किसी भी सन्दर्भ में स्थापित सर्वोच्च मानक को ही कहा गया है। आदर्श जीवन से अभिप्राय है कि वो जीवन जो किसी प्रकार के उत्तम मानदंडों के अनुसार जिया गया हो या जिया जाये।

19वीं सदी के इस तरफ हमें आदर्श जीवन की बात क्यों करनी चाहिए, शायद इसलिए कि जीवन के अच्छे, बुरे या आदर्श होने के जो भी सामाजिक अथवा धार्मिक आदर्श हम जानते थे, वे सभी धीरे-धीरे परिवर्तित हो रहे हैं। व्यक्ति, परिवार और समाज सभी का रूप बदल रहा है और हमारी और दूसरों की पारस्परिक अपेक्षाएं भी इसी तरह बदलती जा रही हैं। ऐसे में ये सोचना काफी अपेक्षित है कि वर्तमान समय में एक आदर्श जीवन की रूपरेखा कैसी होनी चाहिए या कैसी है?

आदर्शों की आज के समाज में एक विशेष उपयोगिता है। हर व्यक्ति किसी न किसी तरह से स्थापित किये गए आदर्शों के हिसाब से जीवन जीना चाहता है। आप देखेंगे कि लोग अक्सर धार्मिक आदर्शों का पालन करने की कोशिश करते हैं जिनके अनुसार कुछ तरह के कामों से ऊपरवाला खुश होता है या आगे चल कर जन्नत या स्वर्ग मिलता हैं। धार्मिक आदर्शों ने काफी समय से मनुष्य के उपक्रमों को दिशा दी है। बहुत सारी प्राचीन और आधुनिक व्यवस्थाएं धार्मिक आदर्शों को ध्यान में रख कर बनायी गयी हैं। ठीक उसी प्रकार से कई लोग विधि द्वारा निर्धारित नागरिक आदर्शों का पालन करने में विश्वास रखते हैं। जैसे कि झूठ नहीं बोलना, धोखाधड़ी नहीं करना, लूट-पाट, मार-काट नहीं करना क्योंकि ये सब विधि द्वारा स्थापित दंडनीय कार्य हैं। आधुनिक जीवन की काफी कार्यप्रणाली इन आदर्शों के हिसाब से भी चलती है। इसी तरह से सामाजिक आदर्श भी होते हैं जिनके अनुसार लोग अपना रहन-सहन, खान-पान आदि संचालित करते हैं। अगर हम अपने आस पास देखें तो ये भी पाएंगे कि हमारे जीवन की शैली का निर्धारण करने में पारम्परिक और सांस्कृतिक मूल्य भी अपना योगदान करते हैं, जैसे कि हमारे देश में स्त्री-पुरुष, पिता-माता या पुत्र-पुत्री आदि से कुछ अपेक्षित योगदान हैं जिन्हें हम विभिन्न प्रकार से पूरा करने की कोशिश करते हैं।

परन्तु क्या सभी का जीवन पूरी तरह इन धार्मिक, सामाजिक या पारम्परिक आदर्शों के अनुसार चल सकता है? क्या हमारी निजी नैतिकता का कोई अर्थ और योगदान नहीं है ? क्या हममें से किसी का भी जीवन पूर्णतया समाज और धर्म आदि द्वारा स्थापित आदर्शों पर खरा उतर सकता है? क्या मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम या पैगम्बर मुहम्मद साहब या फिर महात्मा गाँधी, महाराजा हरिश्चंद्र या नेल्सन मंडेला आदि के आदर्शों का आज के समाज में संपूर्ण अनुसरण संभव है?

मुझे अक्सर लगता है कि यद्यपि ये सभी आदर्श हमें एक अच्छी दिशा दिखाते हैं, और हमें अवश्य इनके अनुसरण का प्रयास करना चाहिए परन्तु कई बार समय और परिस्थिति के कारण इनका पालन नहीं हो पाता। ऐसे में व्यक्ति को एक ग्लानि का अनुभव होता है जो उसे गाहे - बगाहे विचलित करता ही रहता है। हमारे समाज में "लोग क्या कहेंगे?" जैसे प्रश्न इसी ग्लानि की देन हैं जो सभी को कभी न कभी जरूर चिंतित करते रहे हैं।

क्या ही बेहतर हो कि इनसे अलग हर एक का अपना एक निजी नैतिक कोड हो, व्यवहार का, आचरण का और जीवन शैली का। नहीं! मैं अराजकता की बात नहीं कर रहा हूँ। ऐसा जरूर लग सकता है कि हर व्यक्ति अगर अपने ही निजी विचारों का ही पालन करने लगे तो समाज में सहचारिता और परस्पर सद्भाव का पालन असंभव हो जायेगा, पर मैं सोचता हूँ कि जब तक निजी स्वतंत्रता आपके आस-पास के लोगों के लिए असुविधा नहीं पैदा करती तब तक वह जरूर वांछनीय है।

निजी मानकों को निर्धारित करना और उनका अनुशासनपूर्वक पालन करना जरूर एक कठिन कार्य है, और इसके लिए एक खास तरह की परिपक्वता की आवश्यकता होती है, मगर आज के आधुनिक समय में जब ये पहचानना अनिवार्य होता जा रहा है कि पुराने धार्मिक और सामाजिक आदर्शों में से

कितने आदर्श इस समय काल और परिप्रेक्ष्य में वैध और पालनीय हैं; तब हमें जरूर एक वैकल्पिक व्यवस्था की जरूरत है। उदाहरणस्वरूप आज के समय में स्त्री और पुरुष की पारम्परिक भूमिकाओं में काफी परिवर्तन आया है, महिलाएं अब केवल घर की दहलीज के भीतर ही नहीं बाहर भी पुरुषों के साथ कदम मिलाकर अपना योगदान दे रही हैं और पुरुष भी केवल बाहर ही नहीं बल्कि घर के कार्यों में भी अपना सहयोग बड़े चाव से देते हैं। धार्मिक दृष्टि से भी परम्पराओं में काफी परिवर्तन आ रहा है, हमारे त्योहारों को मनाने के तरीकों में भी सामयिक बदलाव दिखलाई पड़ते हैं। ये सभी बदलाव समय के साथ आये हैं और स्वाभाविक परिवर्तन हैं।

ऐसे में अगर हम पारम्परिक धार्मिक और सामाजिक आदर्शों की दुहाई देकर इन बदलावों का प्रतिरोध करेंगे तो समाज की प्रगति में बाधा आएगी। आवश्यकता है कि सभी लोग अपने एक सूक्ष्मतर नैतिक कोड का पालन करें। यदि हम अपने निजी स्तर पर ईमानदार और नेक हैं तो मुझे नहीं लगता कि हमारा निजी कोड किसी भी तरह के धार्मिक, सामाजिक या फिर नागरिक आदर्शों का उल्लंघन करेगा। बल्कि क्योंकि ये नियम हमने खुद निर्धारित किये हैं, इनका पालन करने में हमें जिस स्वतंत्रता का अनुभव होगा वो ही इस कोड को आगे भी मानते रहने का पुरस्कार होगी। कहीं पर मैंने सुना था कि अगर मनुष्य सिर्फ इसलिए कर्म करता है, क्यूंकि उसे आगे जाकर स्वर्ग या जन्नत मिलेगी या फिर इसलिए ही क्यूंकि समाज में रहने के कायदे-कानून हैं, तो वह अच्छा नहीं हो सकता और बुराई करने के पहले ही अवसर वो उस राह पर कदम बढ़ा देगा।

बात को आगे ले जाते हुए एक अलग तरह के आदर्श की बात की जाये तो वो शायद ज़्यादा प्रसंगात्मक होगी। एक शिक्षक के रूप में मैंने अनुभव किया है कि अक्सर छात्र दूसरों के द्वारा थोपे गए मानकों या आदर्शों को पूरा करने के प्रयास में अत्यधिक दबाव का अनुभव करते है। माता पिता की अपेक्षाएं, मित्रों, रिश्तेदारों, शिक्षकों की अपेक्षाएं ये सभी बच्चों को एक तरफ जहाँ प्रोत्साहित करती हैं वहीँ दूसरी तरफ कुछ छात्रों में हीन भावना को भी जन्म देती हैं। ऐसे कई छात्रों से मेरा साक्षात्कार होता रहा है, जिन्होंने कभी खुद के लिए लक्ष्य निर्धारित नहीं किये इसलिए समय समय पर प्रेरणा का अभाव महसूस करते हैं। ये सोचकर चिंतित होता हूँ कि इनमें से कुछ छात्र आगे चलकर व्यसनों का शिकार हो जाते हैं। ऐसे में मैंने हमेशा ये सुझाव देने की कोशिश की है कि छात्रों को अपनी रूचि, क्षमता और महत्वकांक्षा के अनुसार अपने प्रदर्शन के मानक निर्धारित करने चाहिए और उनका पालन करने के लिए उतनी ही मेहनत और प्रयत्न करना चाहिए।

ऊपर के दोनों उदाहरणों में जैसा कि मैंने कहा, आदर्श जीवन वही है जो ईमानदारी और सौहार्दपूर्ण तरीके से आपने खुद अपनी और सभी की भलाई ध्यान में रखते हुए जीना सुनिश्चित किया है। और ऐसे ही आदर्श जीवन को जीने का प्रयत्न और आकांक्षा हमें रखनी चाहिए। शार्ट-कट की जरुरत हो तो मैं आपको गाँधी जी का जंतर याद दिला दूँ , ये जंतर हमारे समय में NCERT की किताबों में आगे के पृष्ठों में मिलता था :-

गाँधी जी का जंतर

"मैं तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी आजमाओ, जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम तुम उठाने का विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ होगा? क्या उससे वो अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी उससे क्या उन करोडों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है। तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त हो रहा है। (महात्मा गाँधी)

अगर आपको गाँधी जी के इस सन्देश की आज के जीवन में प्रासंगिकता खोजनी है तो अपने घर के आसपास के किसी भी पिछड़े इलाकों का एक चक्कर लगा लीजिये। आखिर में यही कहूंगा कि आदर्श जीवन एक निजी प्रश्न है पर इसके उत्तरों के संकेत हमारे चारों तरफ आसानी से मिल जायेंगे। उसी हिसाब से निर्णय लें और अपना आदर्श जीवन निर्धारित करें। ●

डॉ. अर्क वर्मा

लेख

पटना बिहार में एक संयमी, सदाचारी सज्जन रहते थे नाम था बाबू रामदास। वे सरकारी नौकरी में थे। उनका पाँच वर्ष का पुत्र था कालिदास। रामदास जी अपने पुत्र में अच्छे संस्कारों के सिंचन के प्रति बहुत सजग रहते थे। वे उसको देशभक्ति, संयम, सदाचार, सत्यनिष्ठा जैसे सदगुणों को सुदृढ़, करने वाली कहानियाँ सुनाते थे। एक संत के उपदेशों में कालिदास ने पढ़ा सच्चाई ही खरी कमाई है। जिसे जीवन के सार सत्य के रहस्य को जानना हो, उसे यही कमाई करनी चाहिए।

बस, अब तो उसने संकल्प ले लिया कि मैं सदा सत्य बोलूँगा।

बाबू रामदासजी ने अपने घर के बाहर एक बड़ी सुंदर फुलवारी लगाई हुई थी। उनके बनाये नियम के अनुसार वहाँ के फूल तोड़ना सभी के लिए निषिद्ध था। एक दिन घर की नौकरानी कालिदास को टहलाने वहाँ ले गयी। सुंदर फुलवारी को देखकर बच्चे के मन में फूल तोड़ने की इच्छा हुई। नौकरानी के मना करने पर भी उसने वह फूल तोड़ लिये। बाबू रामदासजी ने जब फूल बिखरे हुए देखे तो उन्होनें घर के नौकरों को डाँटा। वह नौकरानी भी चुपचाप खड़ी थी। आवाज सुनकर बालक बाहर आया और निर्दोष को डाँट मिलते देख बोल पड़ा पिता जी फूल इन्होंने नहीं, मैंने तोड़े थे, उन्होने तो मुझे बहुत मना किया पर मैं तोड़े जा रहा था। गलती मेरी है।

अपने नन्हें पुत्र का सत्य बोलने का साहस देख रामदासजी बहुत प्रसन्न हुए। उस पाँच वर्ष के बालक की यह पहली खरी कमाई थी। उसे गोद में उठाकर बोले-शाबाश बेटे तुमने मार पड़ने के डर को महत्व न देकर सत्य बोलने का साहस किया है। सत्य में बड़ा बल है। परमात्मा सत्य बोलने वाले की कदम-कदम पर सहायता करते हैं।

वे कुछ देर बाद शांत हो गये फिर आशीर्वाद देते हुए बोले – बेटे तुम्हारी सत्यनिष्ठा में मुझे प्रसन्नता मिली है। इसलिए आज से मैं तुम्हें सत्यव्रत नाम से पुकारूँगा।

रामदासजी की पुष्पवाटिका की छोटी सी कली सत्यव्रत समय पाकर विश्व उपवन को भारतीय संस्कृति की महक से महकाने वाले एक सुविकसित पुष्प में परिणित हुई। वही बालक आगे चलकर वेद-वेदांगों के महान विद्वान पं सत्यव्रत सामश्रमी के नाम से विख्यात हुआ और हिंदू धर्म के 'छ' वेदांगों में से एक 'निरुक्त' जैसे महान ग्रंथ पर उन्होंने टीका लिखी।

कहा गया है – उद्यम, साहस, धैर्य ,बुद्धि, शक्ति ,पराक्रम

षड़ेते यत्र वर्तन्ते, तत्र देव सहायकृत।।
अंत में मैं कुछ पंक्तियाँ कहूँगा –

तारों के बिना विद्युत का प्रवाह नहीं हो सकता,
रेखाओं के बिना चित्र कभी तैयार नहीं हो सकता।
हे मेरे भारत के कर्णधारों
संस्कारी नौजवानों के बिना देश का विकास नहीं हो सकता।

स्रोत-ऋषिप्रसाद

लक्ष्य गंगवार, विद्यार्थी

क्रांतिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल

प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के जीवन का एक अंश, भूमिगत होने का निर्णय बात सन् 1924 की है। कानपुर में बोल्शेविक षडयंत्र केस चल रहा था। उन्हीं दिनों शचीन्द्र नाथ सान्याल को कानपुर आने पर ज्ञात हुआ कि अंग्रेजी सरकार द्वारा उनको बंदी बनाए जाने की संभावना है। उस समय तक सान्याल संपूर्ण उत्तरी भारत में क्रांतिकारी संगठन का पुनर्गठन कर चुके थे जिसे उन्होंने 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोशिएशन' का नाम दिया था। संगठन के विभिन्न केन्द्रों का दायित्व कुशल, योग्य एवं साहसी कार्यकर्ताओं पर था। अब ऐसी स्थिति थी जब सान्याल स्वयं को बंदी होने से बचाने के लिए भूमिगत हो सकते थे। भूमिगत होने से पूर्व की उनकी मनोव्यथा, उलझन, वेदना, व्याकुलता और बाद के तमाम कष्टों का उन्होंने अपनी आत्मकथा 'बंदी जीवन' में बहुत विस्तार से वर्णन किया है, जिसे पढ़ कर हृदय द्रवित हो उठता है। यद्यपि इस चर्चा का उनके क्रान्तिकारी कार्यों से कोई सीधा संबंध नहीं है। यह उनके नितान्त व्यक्तिगत क्षणों के अहसास हैं। लेकिन यह अहसास हमें जीवन में कठिन से कठिन निर्णय लेने और संघर्षों का सामना करने के लिए प्रेरित करते हैं।

शचीन्द्र नाथ सान्याल के परिवार में विधवा माँ, चार भाई, सान्याल की पत्नी, उनके दो बच्चे, तथा छोटे भाई की पत्नी थीं। इन सबमें परस्पर अत्यधिक प्रेम भाव था। सान्याल के गृह त्याग का उनकी पत्नी के अतिरिक्त सभी विरोध कर रहे थे। सभी जानते थे कि उनका मार्ग बहुत कठिन था। कुछ भी हो सकता था-कारावास, कालापानी अथवा शहादत। सान्याल की क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण परिवार पर पहले भी संकट आते रहे थे।

भूमिगत होने का निर्णय लेने के कारण सान्याल पर्याप्त दुविधा पूर्ण मनोदशा में थे। विवाह के बाद ही सान्याल ने अपनी पत्नी प्रतिभा देवी को अपने क्रांतिकारी जीवन, इस जीवन के संकटों और कठिनाइयों के विषय में अवगत करा दिया था। प्रतिभा देवी ने कभी भी सान्याल के निर्णयों का विरोध नहीं किया, सदैव उनके साथ चलती रहीं। इस संदर्भ में 'बंदी जीवन' में एक रोचक प्रसंग की चर्चा की गई है। फरवरी 1925 में प्रयाग में कुंभ स्नान चल रहा था। वहाँ सान्याल की भेंट एक सान्याली, चन्द्रपुरी जी से हुई। एक दिन वे अपनी माता और पत्नी के साथ उनसे मिलने गए। स्वामीजी को सान्याल का मन्तव्य ज्ञात था। उन्होंने सान्याल से कहा कि विवाह के बाद अपनी पत्नी की अनुमति के बिना कोई भी धर्म का कार्य करना अनुचित होगा। सन्यासी जी ने सान्याल की पत्नी से पूछा क्यों बेटी तुम अपने पति को इस काम के लिए अनुमति देती हो; पत्नी की प्रतिक्रया सान्याल के ही शब्दों में देखिये उस बेचारी तरूणी ने कम्पायमान देहावयव के इंगित से विकसित कुसुम की नाई हँसते हुए मुख को हिलाकर अपनी अनुमति प्रकट की, लेकिन नयन पल्लवों के द्रुत संचालन के साथ आँखों से दो चार आँसुओं की बूँदें टपक ही पड़ी। (बंदी जीवन, पृ. 347) लेकिन भूमिगत होने से पूर्व सान्याल की चिंता कुछ और ही थी। फरार होने के बाद भविष्य में क्या होगा, यह ज्ञात नहीं था। यदि पत्नी, बच्चों को छोड़कर फरार होते तब क्या होता? अपने लड़के का मुँह देखते हैं तो यह सोचने लगते हैं कि यह बेचारा भी पितृ-स्नेह से सदा के लिए वंचित रह जायेगा। मैं इस भावना से नितांत विचलित हो जाता था (बंदी जीवन पृ-342)। अंतत: सान्याल ने अपनी पत्नी व बच्चों को साथ ले जाने का निश्चय कर लिया।

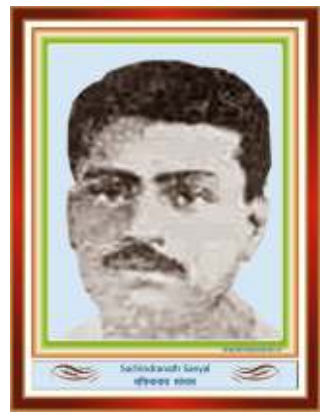

जब परिवार के समक्ष सान्याल का भूमिगत होना निश्चित हो गया, उन क्षणों में वृष्टि से जो पहले ही भली भाँति आर्द्र हो चुका हो, ऐसे वृक्ष के झकझोरने से जैसे उसके पत्तों से एकदम बूँदों की बौछार होने लगती है वैसे ही हम चारों (भाइयों) के नयनों से नीर की बौछार होने लगी...। पता नहीं मेरी तरूणी भार्या पर क्या बीत रही थी? गोद में बच्चों को लिए हुए बेचारी सर्वक्षण एकाग्रचित्त होकर बैठी हमारी बातें सुन रही थी। मैंने दो नन्हें-मुन्ने बच्चों और तरूणी भार्या को साथ लेकर ब्रिटिश शासन के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए फरार होने का साहस किया।

माता से 25 रु मासिक की मदद का आश्वासन मिल चुका था। दल की ओर से किसी प्रकार की आर्थिक मदद की आशा नहीं थी क्योंकि क्रांतिकारी संगठन तो स्वयं सदैव आर्थिक संकट में रहता था। ऐसी अनिश्चयात्मक स्थिति में मैं अपने परिवार को लेकर अथाह समुद्र में कूद पड़ा (वही पृ 344) लेकिन अपनी दुखिनी विधवा जननी को छोड़ने का दुख उन्हें सदैव बना रहा। जुदाई की घड़ी भी आ गई। बच्चों को स्टेशन पहले ही चले जाना था। माता की सहनशक्ति अंतिम सीमा तक आ पहुँची थी.....आँसू अविराम टपक रहे थे.....वह बहुत रोने लगी। मेरा दो साल का बच्चा झुक-झुक कर बार-बार माताजी का मुँह देख रहा था।

बुद्ध देव को महाभिनिष्क्रमण के समय ऐसा दृश्य देखना नहीं पड़ा था(पृ. 352)। लेकिन गाड़ी पर बैठते ही सान्याल ने एक अपूर्व स्फूर्ति का अनुभव किया। पुलिस के सब प्रयत्नों को विफल करते हुए जब उनकी आँखों में धूल झोंक दी तो उन्होंने एक छोटी सी विजय की आत्म तुष्टि का अनुभव किया (पृ. 353) अब सान्याल को बंगाल जाना था। अभी तक उन पर कोई अभियोग नहीं था। ये गुप्त रूप से बंगाल में रहकर विप्लव आंदोलन से जुड़े रह सकते थे तथा भावी कार्य नीति बना सकते थे। उन्होंने फ्रांसीसी उपनिवेश चन्द्र नगर को अपना गंतव्य बनाया। सान्याल ने एक पुराने साथी नरेन्द्र नाथ बनर्जी को तार द्वारा चन्द्र नगर आने की सूचना दी थी। नरेन्द्र नाथ स्टेशन पर नहीं आए। अपनी तीन माह की पुत्री और दो वर्ष के पुत्र को लेकर वे एक घंटे की पैदल यात्रा के उपरान्त नरेन्द्र से मिल सके। नरेन्द्र ने सान्याल परिवार को अपने घर में शरण देने से साफ इन्कार कर दिया। बड़ी कठिन स्थिति थी। भूख से व्याकुल और लंबी यात्रा से शिथिल बच्चों को

लेकर वे पुन: पैदल चल पड़े। यह एक घंटे का सफर बड़ा कठिन रहा। साथ में तीन महीने की शिशु कन्या और दो साल का एक शिशु बालक भूख से व्याकुल हो रहे थे। पास में दूध नहीं था। माता के पयोधर से शिशु कन्या का निर्वाह हो चुका था। केवल दो साल का बालक क्षुधा से व्याकुल होकर अविरल रो रहा था। क्षुधा की यंत्रणा से बालक के मुँह से एक या दो शब्द निकलते थे। दूध दाओ, दूध दाओ जीवन में सर्वप्रथम मेरे बालक ने इन्हीं दो शब्दों का उच्चारण किया था (वही पृ 357)।

लगभग एक घंटे के बाद सान्याल अपने एक अन्य पुराने साथी श्रीश चन्द्र घोष के घर पहुँचे। मरूभूमि के बीच जलाशय को देखकर जैसे पथिक सुखी होता है वैसे ही श्रीश बाबू को देख कर मुझे खुशी हुई। वहाँ उन्हें आश्रय मिला। वे लिखते हैं दरिया में तैरते-तैरते जब थके हुए मनुष्य का पैर किसी ठोस वस्तु को स्पर्श करता है उस समय उसकी जो अनुभूति होती है अपने बाल बच्चों को श्रीश बाबू के घर की स्त्रियों के पास भेज कर मुझे भी वैसी ही तसल्ली हुई। बच्चों को दूध और मुझे साँस लेने का समय मिला (पृ.358)

लेकिन श्रीश बाबू का घर सान्याल परिवार का स्थायी आश्रय स्थल नहीं बन सकता था क्योंकि उन्होंने पुलिस को विप्लव आंदोलन से दूर रहने का वचन दिया था। सान्याल को शीघ्र ही अपने निवास स्थान की कोई व्यवस्था करनी थी। सारा दिन दूर-दूर तक भटकने के बाद पहले का भय और दृढ़ हो गया कि इस स्थान पर रहने से मलेरिया से हम लोगों को जर्जरित होना पड़ेगा... चित्त व्याकुल हो उठा, क्या करें और क्या न करें (पृ 360)? सान्याल ने बंगाल आने की सूचना वहाँ के किसी भी क्रान्तिकारी संगठन को नहीं दी थी, इसीलिए उनकी कठिनाइयाँ बढ़ गई थीं। एक ओर पुलिस का भय था दूसरी ओर रहने की समस्या थी, वे भटक रहे थे। उनके साथ उनका परिवार भी भटक रहा था। इस संबंध में उन्होंने आगे लिखा है कि इन सब घटनाओं के बाद जब सन् 1930 में मैंने नैनी सेंट्रल जेल में ट्रॉटस्की की आत्मकहानी पढ़ी एवं सन् 1934 में लखनऊ सेंट्रल जेल में रहते समय साइबेरिया स्थित रूस के क्रांतिकारी पुरुष और स्त्रियों की जीवन कथा पढ़ी तब मैनें अनुभव किया कि मेरा भटकना उन लोगों की तुलना में कुछ भी नहीं था पृ 361। लेकिन यह सोच तो बाद की है। उस समय तो उनका चित्त व्याकुल हो उठा, क्या करें और क्या न करें....।

चन्द्र नगर से कुछ दूरी पर श्रीरामपुर था। श्री रामपुर में सान्याल के मामा की ससुराल थी। वहाँ मामा का बेटा भवानी शंकर अपनी नानी के पास रहता था। सान्याल जानते थे कि नानी उन्हें पसंद नहीं करती थीं फिर भी इस लाचारी में उन्होने भवानी शंकर से मिलने का निर्णय लिया। वे श्रीश के परिवार में बच्चों को छोड़कर अकेले ही भवानी से मिलने गए। वहाँ उन्हें कुछ समय के लिए सहर्ष आश्रय मिल गया। उस उपकार को सान्यान कभी नहीं भूले। उन्होनें लिखा "आज मैं बहुत कृतज्ञता के साथ भवानी भैय्या की सहायता का स्मरण कर रहा हूं (पृ 360)।" भवानी शंकर की मदद से गृह उपयोगी सारी बातों को ध्यान में रखते हुए सान्याल ने बाली नामक कस्बे में रहने की व्यवस्था कर ली लेकिन वे वहाँ भी अधिक समय तक नहीं रह सके। उनका बेटा ब्रांकाइटिस से पीड़ित हुआ। अत: इलाज के लिए उन्हें उसे कोलकाता लाना पड़ा। अंतत: उन्होंने वहीं रहने का निर्णय लिया। कुछ लोगों के अतिरिक्त सान्याल ने अपने निवास स्थान के बारे में किसी को नहीं बताया था।

इन सारी सावधानियों के बावजूद 1925 में सान्याल बंदी बना लिए गए। यहीं से उनके द्वितीय बंदी जीवन की यातनापूर्ण लंबी कहानी का आरंभ होता है। उन्हें दूसरी बार निर्वासन (कालापानी) का दंड मिला। अंडमान की सेलुलर जेल कभी भी उनके अदम्य साहस को तोड़ नहीं सकी। यह वह जगह थी जहाँ रहने के बाद अनेक क्रांतिकारियों के साहस का अंत हुआ, अनेक विक्षिप्त हुए, कुछ ने आत्महत्या की और अनेक क्रांतिकारियों ने काला पानी से वापस आने के बाद क्रांतिपथ का त्याग कर दिया। सान्याल जानते थे कि जिस मार्ग पर मैं चल रहा हूँ उसका अंतिम परिणाम मेरे लिए कुछ अच्छा नहीं है....। पर यह सब जानते हुए भी मैं कर्तव्य पथ से कैसे हट जाऊँ? यदि भारत को स्वाधीन होना है तो मेरे ऐसे शत-सहस्त्र युवकों को ऐसे निर्मम निर्यातन सहने ही पड़ेंगे (वही पृ 351)। ऐसे वीर, निर्भीक एवं साहसी क्रांति-पुरुष को मेरा शत्-शत् नमन।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की सहस्र धारा का इतिहास ऐसे सैकड़ों हजारों युवकों से भरा पड़ा है जिनके विषय में आज कोई नहीं जानता। आजादी के पहले और आजादी के बाद भी स्वतंत्रता संग्राम में उनके अवदान को न तो हमारे इतिहास ने स्वीकार किया और न ही हमारे नेतृत्व ने। हम इन्हें याद करते रहें, यह हमारा सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सरोकार है।

डॉ.ऊषा निगम

अमृत बिन्दु

जो प्राप्त है, उसमें प्रसन्नता अनुभव करते हुए अधिक के लिए प्रयत्नशील रहना बुद्दिमानी की बात है, पर यह पहले सिरे की मूर्खता है कि अपनी कल्पना के अनुरूप सब कुछ न मिल पाने पर मनुष्य खिन्न और असंतुष्ट ही बना रहे। सबकी सब इच्छाएं कभी पूरी नहीं हो सकतीं। अधूरे में जो संतोष कर लेता है, उसी को इस संसार में प्रसन्नता उपलब्ध हो सकती है।

श्री राम शर्मा आचार्य

इधर मैं काफी समय से म्यांमार (बर्मा) में बसे रोहिंग्या मुसलमानों पर हो रहे अत्याचार के बारे में सुन रहा हूँ । कल की ही बात है, मेरे एक मित्र मुझसे आग्रह करने लगे कि म्यांमार में बसे मुसलमान भाइयों के लिए मुझे कुछ करना चाहिए: मसलन धरना देना चाहिए या मार्च निकालना चाहिए। कुछ नहीं तो कम से कम अपनी व्हाट्सएप की डी.पी. (छायाचित्र) तो बदल ही लेना चाहिए। बर्मा में मुसलमानों को धर्म की स्वतंत्रता मिलनी ही चाहिए और धर्म के आधार पर उनका दमन समाप्त होना चाहिए। चूँकि मैं एक भारतीय मुसलमान हूँ इसलिए भारत के मुसलमानों के विषय में मुझे पहले सोचना चाहिए एवं तत्पश्चात् संसार के समस्त मुसलमानों के बारे में सोचना चाहिए। उनकी इस बात ने मुझे अत्यंत विचलित किया। मैं उनसे मिलने के बाद सोचने लगा कि आज के मनुष्य को यह क्या हुआ है? यह किसी समुदाय विशेष की बात नहीं, लेकिन मुझे वह बात कभी समझ नहीं आई जो मैं इस लेख के माध्यम से कहने जा रहा हूँ। ये मैं किसी समुदाय को बुरा कहने या किसी समुदाय की तुष्टिकरण हेतु नहीं बल्कि ये मेरे ह्रदय के उद्गार हैं और जिनका उत्तर मुझे अभी तक नहीं मिला है।

सर्वप्रथम तो मुझे आज तक ये नहीं समझ आया कि मुसलमान अपने धर्म की स्वतंत्रता की मांग इतने सहज रूप से कैसे कर लेते हैं? मैं प्रायः यह बात सभी मुसलमानों से कहता भी हूँ और यदि कोई मुस्लिम बंधु यह लेख पढ़ रहा तो मुझसे अवश्य संपर्क करे और बताये कि क्या पूर्व में कभी कुछ ऐसा घटित हुआ है अथवा भविष्य में ऐसी कोई सम्भावना है कि एक मुस्लिम राष्ट्र में भी सभी नागरिकों को समान रूप से अपने धर्म के पालन का अधिकार मिल ही जाए? आज अगर हम कहते हैं कि म्यांमार में रोहिंग्या मुसलमानों के साथ, चाइना में उइघुर मुसलमानों के साथ, अफगानिस्तान-इराक में यूनाइटेड स्टेट्स के हाथों मुसलमानों के साथ बुरा हो रहा है, तो क्या हममें यह कहने का भी साहस है कि कश्मीर में बड़ी संख्या में कश्मीरी पंडितों का पलायन भी बहुत दुखद था? क्या हम में ये साहस है के हम पाकिस्तान में हिन्दुओं तथा शिया मुसलमानों पर हो रहे अत्याचार के विरोध में मार्च निकालें और धरने दें? क्या हममें आज ये साहस है कि हम कहें के जो धर्म की स्वतंत्रता हम भारत में चाहते हैं, ऐसी ही स्वतंत्रता हम हिन्दू या जैन या सिख को भी मुस्लिम राष्ट्रों में देने की मांग करेंगे? क्या इस्लामिक स्टेट के नाम पर हत्या और आतंक का हमें विरोध नहीं करना चाहिए?

हमारी ये प्राचीन मान्यता कि केवल हमारा धर्म ही सर्वोच्च है, क्या कभी बदलेगी? आखिर कब तक हम भूत काल के भूत को यूँ ही ढोते रहेंगे? हम कब अपने मुफ्ती-मौलानाओं से कहेंगे कि हमें भी समय के साथ कदमताल करना चाहिए? अगर हम भारत और सारे विश्व में लोकतंत्र की बात करते हैं तो यह लोकतंत्र हम स्वयं अपने आचार एवं विचारों में क्यूँ नहीं लाते? क्यूँ हम किसी व्यक्ति पर, जिससे हमारा वैचारिक मतभेद है, फतवे लाद देते हैं? मैं किसी भी धर्म के सिद्धांतों के बारे में अपशब्द कहने के विरोध में हूँ, मगर क्या किसी व्यक्ति को बिना किसी धर्म को अपशब्द कहे अपने विचार रखने का भी अधिकार आप नहीं देंगे? अपने धर्म को मानना ठीक है। भारतीय संविधान में उसके प्रचार प्रसार का भी अधिकार हमें है पर अपने मुसलमान भाइयों के साथ हम वैचारिक हिंसा कब बंद करेंगे?

मैं आज तक समझ नहीं पाया कि अगर एक मुसलमान योगासन करने की बात करता है तो वो काफ़िर और मुशरिक़ या मुनाफ़िक़ कैसे हो गया? क्या कोई भी बात, जो आपके धर्म में नहीं लिखी है, आप बिलकुल इन्कार कर देंगे या उसे दबा देंगे? फिर आप में और उन म्यांमार के अत्याचारियों में क्या अंतर रहा? वे शारीरिक हिंसा कर रहे हैं और आप वैचारिक। हिंसक तो दोनों ही हैं, तो फिर एक अत्याचारी के साथ मैं कैसे खड़ा हो जाऊं, महज दूसरे अत्याचारी से लडने के लिए? अब समय आ गया है कि आज का मुसलमान भूत काल के भूत से पीछा छुड़ा ले। हमें ये समझना होगा कि जिस प्रकार हम अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता चाहते हैं वैसे ही सभी धर्मों को अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए और उसी भाँति सभी प्रकार के अत्याचार की निंदा भी करनी चाहिए चाहे वो भूतकाल में किसी का आक्रमण रहा हो या वर्तमान में। हमारी यह सोच कि इस्लाम धर्म सर्वोपरि है। इस्लाम ही नहीं बल्कि सभी धर्मों के मानने वालों को अपना धर्म सर्वोपरि समझना चाहिए। अगर आपको अपना धर्म अच्छा

लगता है तो यहाँ तक कोई बुराई नहीं है मगर यह सोचना कि सब हमारी मानें और हम किसी की न सुने, यह तो विशुद्ध वैचारिक हिंसा है जिसे तुरंत बंद करना होगा। इसी तरह जैसे म्यांमार में रोहिंग्या मुसलमानों की हत्या बंद होनी चाहिए। इसी प्रकार सभी प्रकार की हिंसा को रोकना होगा। और सिर्फ धार्मिक ही नहीं सभी प्रकार के विचार, चाहे वे धार्मिक हों या राजनीतिक, समाजिक अथवा आर्थिक, को मानने वालों का यह कर्तव्य है कि वे अपने विचारों के आगे दूसरे के विचारों को धूल धूसरित न करें बल्कि उन पर तर्क के आधार पर वार्तालाप करें, उनका मंथन करें न कि किसी पूर्व मान्यता के आधार पर। यह सभी भारतीय नागरिको का आधारभूत संवैधानिक कर्तव्य भी है। ●

मुहम्मद उस्मान
शोध छात्र

सच्चा पुत्र

एक बार तीन स्त्रियाँ गाँव के पनघट पर पानी भरने गईं। वे एक दूसरे से अपने पुत्रों के गुणों का बखान करने लगीं। पहली बोली मेरा बेटा बहुत बड़ा ज्योतिषी है। तो दूसरी ने कहा- मेरा बेटा बहुत नामी पहलवान है। तीसरी स्त्री को चुप देखकर उन्होंने उसके पुत्र के विषय में पूछा । वह बोली – बहन वह कोई नामी व्यक्ति नहीं है, परंतु मेरी दृष्टि में मेरा पुत्र प्रिय है। इसके उपरांत सभी स्त्रियाँ अपने घरों की तरफ लौट पड़ी। मार्ग में पहली स्त्री का पुत्र मिला और बोला-बहुत अच्छा माँ मैं जा रहा था, तुमने पानी से भरा घड़ा दिखा दिया, यह शुभ शकुन है। अब दिन अच्छा बीतेगा। थोड़ी दूर पर दूसरी स्त्री का पुत्र मिला और बोला- माँ दिन भर कुश्ती करके आ रहा हूँ, जोर की भूख लगी है। जल्दी से घर पहुँचकर खाना लगा दे। तभी तीसरी स्त्री का पुत्र आया और बोला- माँ मैं आ ही रहा था तो तू पानी भरने क्यों आ गई। ऐसा कहकर वह माँ से घड़ा लेकर चल दिया। शेष दोनों स्त्रियाँ खड़ी सोचती रह गईं कि सच्चा पुत्र कहलाने योग्य कौन है?

राष्ट्र, माँ और आदर्श जीवन

अपने ढंग की वैज्ञानिक हूँ मैं माँ!
सभी जातियों के संस्कारों को समेटे
सम भाव से जीवन जीती हूँ मैं माँ!
जब छोटे बच्चे रहते हैं मेरे
तब लालन पालन में उनके
साफ-सफाई में लुत्फ उठाती मैं, माँ!
और शुद्ध जाति की बन जाती मैं, माँ!
जब थोड़े से बड़े बच्चे होते हैं, मेरे
तब नकारात्मक शक्तियों से उन्हें
बचाने क्षत्राणी बन जाती मैं, माँ!
जब किशोर अवस्था बच्चे हो जाते हैं, मेरे
विद्या अर्जित करने में व्यस्त होते हैं सारे
तब ब्राह्मणी बन गुरुकुल में
सुशिक्षा देती यह अपने ढ़ंग की वैज्ञानिक माँ!
जब लांघ किशोरावस्था बच्चे
प्रवेश करते एडल्ट हुड में
सिखाने को आर्थिक आदान-प्रदान
वैश्य जाति की बन जाती मैं, माँ!
जाति के नाम पर जब देश में
होते फसाद एवं दंगे
तब दुखी मन मूक दृष्टा बन करके
प्रश्न पूछती अपने आप से
यह अपने ढंग की वैज्ञानिक माँ!
यदि राष्ट्रवादी भारत को
आदर्श जीवन पथ पर है चलाना
तो क्यों न याद रखें हम भारतवासी
अनुसरणीय, और अनूठे जीवन के आदर्श को
अपने ढंग की अनूठी
अपने ढंग की वैज्ञानिक सम जातीय माँ को?

सुकर्मा थरेजा, पूर्वछात्रा

एक नया इल्ज़ाम लगा है उस पर कि बड़ी चहलकदमी करने लगा है वह आजकल जो उसने कुछ दिनों पहले ही शुरू की थी, एक पुराने इल्ज़ाम को ख़ारिज़ करने के लिए। पुराना इल्ज़ाम यह था कि वह सिर्फ उनसे ही बातें करता था जिसको सिर्फ वह देख सकता था। अपनी ही दुनिया में रहता था, किसी से कोई मतलब नहीं। कुछ ऐसे शख्स थे जिनसे वह गुपचुप गुफ्तुगू करता था, वह भी पहेलियों में। उनके साथ वह खूब हँसता था, गुस्सा भी करता और तो और कभी-कभी बिना इस बात की फिक्र किये कि 'कोई देखेगा तो क्या बोलेगा' चिल्ला-चिल्लाकर रोता था जैसे कोई छोटा बच्चा हो। यह कैसे हो सकता है कि कोई 'सामान्य' इंसान सभी तरह की मानवीय संवेदनाओं को महसूस भी करे और जिये भी, और वो भी एक साथ. न.. न..न, कुछ तो गड़बड़ था उसमें बहुत भयंकर गड़बड़!

'तुम बड़े मतलबी हो यार, सिर्फ अपने से मतलब रखते हो- अपने में ही जीते हो। कभी रोटी-दाल का भाव भी पता कर लिया करो, उनके दर्द और तबियत के बारे में भी पूछ लिया करो जो तुमको सिर्फ अपने में ही जीने लायक बनाते हैं। क्या बेकारों जैसी जिन्दगी जी रहे हो? खैर छोड़ो, बेकार है तुमको कुछ बोलना। तुम तो अपनी ही दुनिया में मस्त रहते हो, दूसरों से तुमको क्या मतलब-वें जियें या मरें!' यही शिकायत थी उससे उसको जानने का ढोंग करने वालों को। उसके खिलाफ दर्ज होती इन शिकायतों को सुनकर वह परेशान हो जाता, इंसान ही तो था वह, परेशान कैसे नहीं होता? हर परेशानी भी साँझा करता था वह अपने दोस्तों से-उन्हीं से जिनको सिर्फ वह देख सकता था। उसके दोस्त उसकी परेशानियों को पहले पूरी शिद्दत से सुनते फिर हँसते और कहते, "बस इतनी सी बात से परेशान हो! अमां, परेशान लोगों से बतियाओगे तो यही होगा।" उसकी परेशानी का इससे ज्यादा सटीक, अचूक और फौरी इलाज और कुछ था ही नहीं। लिहाजा, चंद लम्हों में ही वह फिर से 'सामान्य' हो जाता और एक बार फिर अपनी दुनिया में अपने दोस्तों के साथ मस्त...

चांदनी से रौशन एक रात में छत की चहारदीवारी की आड़ में जब वह अपने खास दोस्तों के साथ शतरंज खेल रहा था तब उसने अपने साथी खिलाड़ी को अपना दर्द बयाँ किया, "जानते हो मुझे सबसे ज्यादा नफरत किससे है?"

उसके साथी खिलाड़ी के साथ झुण्ड लगाये बैठे बाकी दोस्तों ने भी सुर में सुर मिलाकर बेताबी से पूछा, "किससे है?"

"तुम्हारे वजीर से!," उसने बेधड़क फरमाया।

"ऐसा क्यूँ?," सभी दोस्तों ने एक बार फिर एक सुर में पूछा, उसने पहले शतरंज की बिसात को और फिर अपने दोस्तों को घूरते हुए बोला, "यार, तुम्हारे वजीर की नीयत ठीक नहीं है। वह मेरी रानी के पीछे पड़ा हुआ है।"

उसके सभी दोस्त इस बात पर एक साथ हँसे और फिर एक साथ बोले,

"बस इतनी सी बात से...लो हटा देते हैं इस बद्तमीज वजीर को।"

खिलते फूल की तरह मुस्कुराहट उसके चेहरे पर फैल गयी लेकिन फौरन ही गंभीर होते हुए उसने अपने दोस्तों से पूछा, "कहाँ रखोगे अपने वजीर को?"

"डिब्बे में," दोस्तों ने जवाब दिया।

कुछ देर सशंकित शांत बैठा रहा वह फिर बोला, "लेकिन बिसात उठने पर तो मेरी रानी भी उसी डिब्बे में चली जाएगी, तुम्हारे वजीर के पास।"

"य्ये बात...हमारा वजीर तो तुम्हारी रानी के पीछे कभी पड़ा ही नहीं था। वो तो तुम्हारे चाहने पर हमनें उसको तुम्हारी रानी के पीछे लगा दिया था और तुम्हारे कहने पर हटा भी दिया।" उसके दोस्तों ने पहेली सुलझायी।

मामले की पेचीदगी को समझते हुए उसने शतरंज की बिसात बिगाड़ दी और बुझी आवाज में बोला, "हटाओ! साला धोखाधड़ी वाला खेल है।"

दोस्तों ने मुस्कुराते हुए शतरंज के सभी किरदारों को डिब्बे में बंद कर खेल को समेट दिया। थकान महसूस करते हुए वह वहीं छत पर मोर के फैले पंखों की तरह अपने हाथ-पैर फैला कर लेट गया। दोस्तों में कोई गैर-बराबरी की शिकायत न हो इसलिए बाकी दोस्त भी फौरन उसी मुद्रा में लेट गये।

चाँदनी बिखेरते उस चाँद को एकटक देखने के बाद उसने अपने दोस्तों से एक सवाल पूछा, "अगर चाँद न चमकता तो चाँदनी होती क्या?"

"बिल्कुल नहीं, चाँदनी को सिर्फ चमकते चाँद से प्यार है, वो चमकता नहीं तो वो उसके पास होती भी नहीं," दोस्तों ने गंभीरता से जवाब दिया।

"कितनी मतलबी है चाँदनी! बिलकुल मेरी तरह," उसने अपने हाथों को किसी से आलिंगन करने जैसे बांधते हुए बोला।

"सौ टके की बात कहे गुरु!," उसके दोस्तों ने प्रति उत्तर में बोला।

"मुझे तो बस अब इसी मतलबी चाँदनी से मतलब है, मतलब मोहब्बत है!," उसने सीना फुलाकर फरमाया।

दोस्तों ने मुंह बिचकाकर एक साथ पूछा, "और हमसे?"

"तुम सब भी तो मतलबी ही हो, सिर्फ मेरी बेकारी में ही मेरे साथ रहते हो, जैसे चाँदनी चाँद के चमकने पर। लेकिन मुझे तुम लोगों से भी मोहब्बत है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन वैसी नहीं है जैसी चाँदनी से है," उसने अपनी भावनाओं के चादर बिछा दिए।

दोस्तों ने खड़े होकर झल्लाकर चेतावनी दी, "तुम्हारी नीयत हमें खराब लग रही है. फैसले का वक्त आ गया है! चुन लो अपनी बेकारी में इस चाँदनी को या बेकार बने रहने दो इस चाँदनी को।"

"अरे, गुस्सा क्यूँ हो रहे तुम लोग? मैं तो बस चाँदनी को छेड़ रहा था, वो अभी आई भी नहीं मेरे पास और तुम लोग मुझे छोड़ कर जा रहे हो। कितने मतलबी हो यार तुम लोग! अब तो मुझे शक है इस बात पर कि ये मेरी बेकारी है या तुम लोगों की जो हमें मिलाती है," वह उठकर बैठा और थोड़ा तुनककर बोला।

उसके दोस्त उसको चारों तरफ से घेर कर बैठते हुए निराशा में बोलें, "हम सब की बेकारी है!"

कुछ देर सभी सोच में पड़ गए लेकिन सोचने के लिए कुछ था नहीं। उसमें अचानक एक विचार कौंधा, बिल्कुल यूरेका टाइप अपने दोस्तों का हाथ पकड़कर उसने कहा, "ये बेकारी बीमारी है! चलो हम मिलकर अपनी बेकारी दूर करते हैं। आखिर दुःख में साथ देने वाले सच्चे दोस्त किस दिन काम आयेंगे?"

"कैसे दूर करें ये बेकारी?" दोस्तों ने व्याकुलता से पूछा।

"चलकर खोजते हैं उन सब को जिन लोगों को हमसे शिकायत है, जो आये दिन इल्जाम मढ़ते हैं हमपर। और, पता लगाया जाये कि कैसे दूर हो उनकी शिकायतें और कैसे खारिज किये जाये उनके इल्जाम," उसने अपने दोस्तों को सुझाया।

"हम्म्म्म...विचार अच्छा है!" कहकर सभी दोस्तों ने रजामंदी दिखायी। फिर सभी अपने रास्ते अपनी जगह चले गए।

उसके सभी दोस्त, वे शख्स जो उसकी अपनी दुनिया में खुद से रची जाने वाली कहानियों के किरदार थे उसको अपनी बेकारी दूर करने के लिए उसे अकेला छोड़कर चले गए। और, इधर वह अपनी दुनिया से बाहर निकल दूसरों की दुनिया में जा पहुंचा जहाँ दूसरे अपनी बेकारी में उसकी शिकायतें करते थे, उसको कोसते थे और उस पर इल्जाम मढ़ते थे...और इस कदर...वह खुद बन गया एक किरदार किसी और की कहानी का। ●

विकास दुबे
शोध छात्र

आदर्श जीवन

आदर्श जीवन, मित्रों बहुत सामान्य सा प्रतीत होने वाला शब्दों का यह समूह कालजयी रहा है। असीम शक्तियों से ओतप्रोत ये शब्द जीवन की दिशा निर्धारित कर उसे सार्थक बनाते हैं।

प्रश्न उठता है कि किसे कहा जाए आदर्श जीवन इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही सरल है किन्तु सार्वभौमिक नहीं है। हर मनुष्य के जीवन की परिस्थितियाँ भिन्न हैं, परिवेश भिन्न हैं और उसके अनुरूप आवश्यकताएं भिन्न हैं तो हम किन्हीं प्रमुख नियमों के समूहों में आदर्श जीवन को नहीं बाँध सकते, किन्तु जिस प्रकार सूर्योदय, सूर्यास्त सार्वभौमिक हैं उसी प्रकार एक नियम है जो आदर्श जीवन का भली भाँति वर्णन कर सकता है और वह नियम है परोपकार। कोई भी जीवन का अंश जिसमें परोपकार का भाव निहित है अर्थात् यदि हम अपनी जीवन शैली में परोपकार को समाहित करते हैं तो हमारी जीवनशैली स्वयं ही आदर्श मार्ग की ओर उन्मुख हो जाती है। यदि परोपकार का भाव होगा तो हृदय को अनावश्यक तृष्णा से बचाकर हम परहित की तृप्ति प्राप्त कर पाएंगे तथा आत्म तृप्ति से अधिक मूल्यवान कोई भाव नहीं है। अत परमार्थ के उद्देश्य से स्वयं को प्रखर करने में प्रयासरत जीवन ही आदर्श जीवन है। हर व्यक्ति आदर्श जीवन का यापन कर सकता है यदि वह अपने कर्तव्यों को पूर्ण करे तथा अपने जीवन का उत्तरदायित्व स्वयं ले। अपने जीवन का उत्तरदायित्व स्वयं लेने से आत्मनिर्भरता की भावना का जन्म होता है तथा किसी भी लक्ष्य की पूर्ति हेतु आत्म निर्भरता अत्यावश्यक है। अतः यह दिवास्वप्न नहीं, संभाव्य है। हम इसे प्राप्त कर सकते हैं। आत्मनिर्भरता के भावों को ग्रहण कर अनावश्यक तृष्णा से स्वयं को बचाकर परमार्थ के लक्ष्य से स्वयं का प्रतिक्षण निर्माण करता, आत्मसंतोष को प्राप्त करता जीवन, आदर्श जीवन कहा जाता है। हम सभी मनुष्यों की आत्मचेतना को प्रज्वल्लित करने का सामर्थ्य होता है, आदर्श जीवन शैली में।

अतः अपने परिवेश और परिस्थितियों के अनुरूप उचित सामंजस्य का निर्माण करें तथा परहित और आत्मनिर्भरता जैसे गुणों का अपनी जीवन-शैली में समावेश कर उस आत्मचेतना के प्राकट्य की अनुभूति करें। ●

तृप्ति सारस्वत
शोध छात्रा

प्रयत्न

मंजिले खोजी नहीं जाती, धुंधलाती रोशनी-ए-मशालों में,
इश्क भुलाया नहीं जाता, साक़ी के पैमानों में।

समुद्र का सूरज तो रोज पानी में डूब के भी ऊपर आता है
क्यूंकि जिंदगी हारी नहीं जाती, उम्र की ढलानों में।।

उम्मीदें टूट जाती हैं विलापों से, खुशी के ठहाको से नहीं,
जंग जीती जाती है वफा से, सैन्य लड़ाकों से नहीं।

चक्रव्यूह के दरवाजों पर चाहे बैठा दो, दस महारथी,
भेद ही देते अर्जुन के बेटे डरते इनके प्रहारों से नहीं

सब कुछ हार गए तो क्या, क्यूँ तुम निराश हो।
सृष्टि थी समाप्त, जब जग था पूर्ण जल मग्न,

क्या हारे थे मनु, भूलकर पुनः सृजन का स्वप्न
उठो, स्मरण रहे मनु पुत्र हो तुम, तुम मनुष्य हो।।

शत प्रयत्न असफल हुए तो क्या, तुम नहीं असफल हो।
भागीरथ रुक जाते, तो
वंचित रहा जाता जग भागीरथी के अवतरण से।

बुझते दिए की लौ भी आखिरी साँस चीख के लेती है,
छोड़ असफलता का मोह, मनुज, अनिराश तू फिर प्रयत्न कर।।

डॉ. अभिषेक के गुप्ता

राष्ट्रपति लिंकन को अपने जूते में पॉलिश करते देखकर उनके मित्र ने पूछा आप अपने जूते अपने हाथों से पॉलिश कर रहे हैं ? लिंकन ने उत्तर दिया-मित्र, अपने जूते दूसरों से पॉलिश करवाने के लिए मैं इस देश का राष्ट्रपति नहीं बना हूँ। यदि मैं स्वयं अपने कार्यों को करने के लिए दूसरों पर आश्रित रहूँगा तो समाज को क्या दिशा और देश वासियों को क्या संदेश दे पाऊँगा; परिश्रम और स्वावलंबन से ही देश का उत्कर्ष होता है। लिंकन की बातें सुनकर उनके मित्र का हृदय गौरव से भर उठा कि उनके देश का राष्ट्रपति कितनी ऊँची सोच और कितने विशाल हृदय वाला है। सत्य यही है कि मनुष्य दूसरों पर आधिपत्य दिखाने से नहीं, वरन अपने गुणों को श्रेष्ठ बनाने से महान बनता है।

सृजन

शांत सरल जीवन मधुवन में ।
काशी-मथुरा के उपवन में ।।
मेरे-तेरे सबके मन में ।
ऐसा बसा सृजन कण-कण में ।।

बूढ़ी अम्मा के आँचल में।
झुककर चलते कोमल तन में ।।
आत्मीय रिश्ते-बंधन में ।
ऐसा बसा सृजन कण-कण में ।।

देश प्रेम और बलिदानों में।
हरित खेत और खलिहानों में ।।
सतत् चलित जीवन के रण में ।
ऐसा बसा सृजन कण-कण में ।।

गोरी के लंबे बालों में ।
लाल-लाल गोरे गालों में ।।
नागिन से इठलाते तन में ।
ऐसा बसा सृजन कण-कण में ।।

विगत ज़माने की यादों में ।
अपनों की बिसरी बातों में ।।
उसकी चूड़ियों की खन-खन में ।
ऐसा बसा सृजन कण-कण में ।।

नन्हीं तितली के रंगों में ।
निर्मल प्रकृति के दृश्यों में ।।
पक्षियों के मधुर क्रन्दन में ।
ऐसा बसा सृजन कण-कण में ।।

रूपम जैन
शोध छात्र

इस्लाम के रहस्यवादी साधक सूफी नाम से जाने जाते हैं। सूफी शब्द की व्युत्तपत्ति सूफ शब्द से मानी जाती है। सूफ का अर्थ ऊन है। ईसवी सन् की आठवी-नवीं सदी में ऊन का व्यवहार करने वाले संसार त्यागी साधकों का पता इस्लामी देशों में चलता है।

सूफियों के दर्शन को तसव्वुफ कहा गया है। सूफी ऐसे साधक थे, जो विरक्त, संसार-त्यागी, परमात्मा के प्रेम में बेसुध रहते थे। उनके लिए न इस लोक के प्रलोभनों का कोई अर्थ था और न स्वर्ग की ही उन्हें चिंता थी। उनकी चिंता का एक मात्र विषय परमात्मा था। उसे पाने के लिए, उसके साथ एकमेक होने के लिए ये साधक सभी प्रकार की साधना के लिए प्रस्तुत रहते थे।

सूफी साधक प्रेम के द्वारा परमात्मा को पाने में विश्वास करते हैं। परमात्मा उसके लिए परम प्रियतम और परम सौन्दर्य हैं। आत्मा उस प्रियतम को पाने के लिए आकुल रहती है। सूफी कवि आत्मा और परमात्मा के इस प्रेम संबंध का वर्णन आत्मविभोर होकर करते हैं। अपने काव्य के माध्यम से वे परम प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन करते हैं।

सूफी कुरान द्वारा प्रतिपादित परमात्मा के स्वरूप को स्वीकार करते हैं। इस्लाम मतावलंबी की भाँति ही वे भी एकेश्वरवाद में विश्वास करते हैं, लेकिन वे अपने ढ़ंग से उसका अर्थ करते हैं। उनके लिए एकेश्वरवाद ठीक वही नहीं है जो परंपरावादी इस्लाम में स्वीकृत है। सूफी मानते हैं कि जात(सत्ता), सिफत(गुण) और कर्म में परमात्मा अद्वतीय और निरपेक्ष है। परंपरावादी परमात्मा को सृष्टि के सभी पदार्थों से भिन्न मानते हैं लेकिन सूफी कहते हैं कि इस दृश्यमान जगत में परिव्याप्त एकमात्र सत्ता परमात्मा की ही है। ऐसा मानने का मतलब यह हो जाता है कि प्रतीयमान जितनी भी सत्ताएं हैं, वे सभी परमात्मा में अंतर्निहित हैं तथा निखिल विश्व परमात्मा के साथ एक है। सूफी परमात्मा को परम सौन्दर्य भी मानते हैं।

परमात्मा जो अनंत सौन्दर्य और अनंत विभूति है, अपने आपको जब अभिव्यक्त करना चाहता है तो सृष्टि का आविर्भाव होता है। यह जगत उस सौंदर्य को प्रकट करने वाला है। परमात्मा परम सत्ता है और सृष्टि असत। जैसे अंधकार के होने से प्रकाश का ज्ञान होता है उसी तरह असत, अवास्तविक जगत उस सत्ता को समझने में सहायक होता है। सूफी कहते हैं कि परम सत्ता जब असत् के दर्पण में प्रतिबिंबित होती है और उसके

फलस्वरूप जो प्रतिबिंब हम देखते हैं, वही सृष्टि है अर्थात् यह दृश्यमान जगत उस परमात्मा का प्रतिबिंब है।

इस प्रकार सूफी सृष्टि को असत् के दर्पण में प्रतिबिंबित होने वाली परमात्मा की प्रतिच्छवि तथा मनुष्य को उस प्रतिच्छवि की आँख जैसा मानते हैं। एक ओर तो मनुष्य सृष्टि का अंग है और दूसरी ओर अपने भीतर परमात्मा को भी ग्रहण किए हुए है। उसमें सत् और असत् दोनों ही विद्यमान हैं। मनुष्य में जो कुछ भी सत्य है, मंगलमय है, वह परमात्मा का है और इसके विपरीत जो कुछ भी उसमें है, वह असत है, क्षणभंगुर है तथा मंगल का नकारात्मक रूप है। मनुष्य के भीतर जो ईश्वरीय अंश है, वह उस विशुद्ध सत्ता की चिन्गारी के जैसा है जो इस बात की चेष्टा में सतत लगी रहती है कि वह अपने उद्गमस्थल पर लौटकर उसके साथ एक हो जाए। लेकिन यह तब तक सम्भव नहीं हो पाता जब तक उसमें असत् तत्व विद्यमान रहता है। यह असत् तत्व मिथ्या है और भ्रम में डालने वाला है तथा अहम् में सत्य की प्रतीति कराने वाला है। अहम् ही सब दुखों के मूल में है, अतएव सूफी साधक की सबसे बड़ी साधना यह होती है कि वह अपने इस अहम् पर विजय प्राप्त करे। इसी के लिए साधक सूफी मार्ग पर चलता है और अपनी साधना पूरी कर परमात्मा के साथ एक होता है।

सूफियों में साधकों की चार अवस्थाएं मानी गई हैं- शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत। शरीयत से तात्पर्य है विधि निषेध का सम्यक पालन, तरीकत अर्थात् बाहरी क्रिया-कलाप से परे होकर हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का ध्यान, हकीकत यानी भक्ति और उपासना के कारण सम्यक बोध और मारिफत यानि सिद्ध अवस्था अर्थात् साधना की उच्चतम भूमि में आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना।

परमात्मा में लीन होने से पूर्व उसे अनेक मन: स्थितियों से होकर गुजरना पड़ता है। पहली स्थिति जागरण की है। आत्मा शुद्ध और चैतन्य है। उसका सांसारिक वस्तुओं से जुड़ना अस्वाभाविक है। वह शुद्ध चेतन से

एकात्मता स्थापित करने के लिए तड़पती रहती है। गुरु के उपदेश द्वारा जगत के मिथ्या होने का ज्ञान उसे होता है, यही जागरण की स्थिति है। परमात्मा से एकात्मकता स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि सांसारिक वासनाओं का त्याग करे, अत: परिष्कार की आवश्यकता पड़ती है। सूफी साधना में अनेक प्रकार के नियम और विधान हैं, जिनमें तौबा, खौफ तवक्कुल, फक़्र, सब्र, रज़ा, शुक्र आदि स्थितियाँ आती हैं। चौथी स्थिति प्रकाशानुभव की स्थिति है, जिसमें साधक को साध्य की अनुभूति होती है।

सत्ता से पूर्ण एकात्म स्थापित करने से पूर्व साधक को सांसारिक विघ्नों से एक बार फिर संघर्ष करना पड़ता है। यह स्थिति विघ्नों की रात कही जाती है। पूर्ण ऐक्य की स्थिति में साधक-साध्य से पूर्ण एकात्मकता स्थापित कर लेता है। पद्मावत में हीरामन तोते द्वारा पद्मिनी के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर रत्नसेन का संसार से विमुख होना और योगीवेश में सात समुद्र पार करना, शिवमंदिर में पद्मावती से प्रथम भेंट, गंधर्वसेन द्वारा रत्नसेन को पकड़ना और अंत में पद्मावती से पूर्ण मिलन की स्थितियाँ साधक रत्नसेन के साधना विकास के पाँच सोपान हैं।

सूफियों के अनेक संप्रदाय और उप संप्रदाय हैं तथा अनेक शाखाएं-प्रशाखाएं हैं। भारतवर्ष के चार प्रमुख सूफी संप्रदाय हैं- चिश्तिया, कादिरिया, सुहरवर्दिया और नक्शबंदिया। इनमें से प्रथम तीन हसन अल बसरी से संबद्ध हैं और चौथा अबू वक्र से। इन संप्रदायों में साधन-मार्ग और सिद्धांत आदि को लेकर अंतर है। भारतवर्ष के चार प्रमुख संप्रदायों में से चिश्ती संप्रदाय सबसे प्रमुख है। भारतवर्ष में इस संप्रदाय का प्रवेश ख्वाजा मुईनद्दीन चिश्ती के साथ हुआ। इनका जन्म सन् 1142 ई. में सिस्तान के संजर शहर में हुआ था और मृत्यु सन् 1236 ई. में अजमेर में हुई। ये ख्वाजा उस्मान चिश्ती हारूनी के शिष्य थे। अजमेर में मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर विभिन्न देशों से लाखों मुसलमान तीर्थ करने आते हैं। वहाँ की मस्जिद बादशाह अकबर की बनवायी हुई है। इस संप्रदाय के सुप्रसिद्ध संतों में ख्वाजा कुतुबद्दीन बख्तियार काकी, पाकपत्तन के बाबा फरीद तथा निजामुद्दीन औलिया आदि है। यह संप्रदाय अत्यंत लोकप्रिय रहा है।

चिश्ती-संप्रदाय में संगीत को प्रधानता दी गई है। संगीत के द्वारा साधक को भावाविष्टावस्था की प्राप्ति होती है। संगीत की मज़लिसें लगातार कई-कई दिनों तक चलती ही रहती हैं।

स-आभार
डॉ.अमरनाथ
हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली

खुशी

चुपके से कहीं आयी थी खुशी,

महका कर मेरे दामन को पल भर के लिए,

सुखद एहसास लायी थी खुशी,

एक दिन मैंने खुशी से पूछा खुशी!

तुम पल भर के लिए क्यों आती हो

जिन्दगी जीने की चाह जगाकर वापस क्यों चली जाती हो?

खुशी मुस्कुराने लगी अपने आप पर इतराने लगी,

बोली, अगर मैं हमेशा ही रह जाऊँ,

तो जिन्दगी एक सार लगेगी,

और ये खुशी भी आपको बेकार लगेगी।

प्रीती शर्मा
प्रशिक्षु

भारत माँ का सपूत

रात हो चली था। एक सर्द हवा का झोंका उसके शरीर को चीरते हुए निकल गया। आज वो इस जगह अकेला खड़ा था, सर्दी बहुत बढ़ गयी थी, दिसंबर का महीना जो था। न जाने क्या कारण था, उसका मन आज कुछ अशांत सा था, उसकी रूह कुछ अनहोनी की भनक सी दे रही थी। जिम्मेदारियों का बोझ उसे पता था। मन हल्का करने के लिए वह गीत गुनगुनाने लगा, रहमान के गानों का दीवाना था वो वन्दे मातरम की धुन गुनगुनाने लगा।

सन्नाटा और गहरा गया, अब उस अँधेरी रात में केवल गांव के चंद घरों में जले दीयों की धीमी रौशनी दिख रही थी। इन रोशनियों की हिफाज़त का जिम्मा आज उसी पर था। सब सही था, शांत था, सबसे वंचित, संपूर्ण अँधेरे में घिरी थी वो जगह।

अचानक, एक भयानक आवाज ने सन्नाटे को शीशे की तरह तोड़ दिया, और उसकी दायीं भुजा में एक झटका लगा। उसका शरीर और भुजा, दर्द के आगोश में घिर गयी, दुनिया जैसे उसके सामने घूमने लगी। मगर उसको ऐसी परिस्थितिओं के लिए तैयार किया गया था, उसने दांत पीस लिए और दर्द को भुला के, अपनी सबसे भरोसेमंद बन्दूक उठा ली। एक और गोली की आवाज हुई और ये गोली उसके कान के बगल से निकल गयी। उसने तुरंत अपनी छोटी सी पोस्ट पर जलती रौशनी बुझा दी। दर्द से उसका दिमाग सुन्न पड़ गया था, बायीं भुजा से प्राण निकल गए थे, गोली उसे दिख रही थी। उसने एक झटके में गोली को निकल फेंका, एक विद्युत् के तेज की भांति दर्द की लहरें दौड़ उठी, आँख से आँसू आ गए और केवल एक ही चीख निकल पड़ी, "या अल्लाह"। उसकी चीख निकलते ही गोलियों की लड़ी चल गयी, वो रेत की बोरियों के पीछे छुप गया और सोचने लगा।

हामिद, उस लड़के का नाम था। कश्मीर घाटी में चल रहे संग्राम के बीच वह पैदा हुआ था। परिवार गरीब था, पिताजी करीम साहब, एक छोटी सी मस्जिद के इमाम थे, माताजी घर पर ही रहती थी। उसके पिता बहुत विद्वान थे, सूफी इस्लाम से ताल्लुक था उनका, और देश प्रेम भरा था उनके दिल में। मगर उनकी किस्मत तो खुदा ने पहले से ही लिख रखी थी। कहाँ फँस गए थे वो, इन लोगो के बीच। पूरे गांव में ज्यादातर लोग कट्टरपंथी थे।

ये वो लोग थे जिन्होंने कभी कुरान की शक्ल नहीं देखी थी, अपनी ख्वाहिशों के किले और कट्टरपंथी मुल्ले, इन दोनों के बीच, अलगाववादी हो चले थे। बस चंद लोग थे, जिनके कानों में अभी भी अमन की बातें डाली जा सकती थीं, यही थे करीम साहब के शुभचिंतक। मगर बाकियों के दिल में करीम

साहब के लिए ऐसी नफरत की आग थी की पूछिए मत साहब! इनको देशप्रेम की बातें हलाहल विष जैसी लगती थीं। वसीम जी की वह पंक्तियाँ उस वक्त करीम साहब पर बहुत सही बैठ रही थी:-

" नफरत के साथ भीड़ है, जोश है, नारा है। मैं बात कर रहा हूँ मुहब्बत की, अमन की, तनहा हूँ, मगर जिन्दा हूँ, हैरत की बात है"

हामिद को करीम साहब ने अपने संस्कार दिए थे, भारत माँ का सपूत बनाया था, उस गांव से आतंकवादी तो बहुत निकले थे, पर सैनिक तो यही था एक, वो भी ऐसा कि सौ आतंकियों के बराबर अकेला। सेना भर्ती में अव्वल था हामिद, छह फीट का सुडौल शरीर, दृढ़ इच्छा शक्ति, और अपनी मिट्टी के लिए कुछ कर गुजरने की चाहत। उन्नीस साल की उम्र में इस पथ पर निकल पड़ा था हामिद। मगर ऊपर वाले का खेल देखिये, करीम साहब का दुर्भाग्य था, उनका छोटा बेटा, कसाब। पता नहीं कैसे वो बिलकुल ही उल्टा निकला, अलगाव से प्रभावित, मन में क्रोध की ज्वाला, जो न जाने कैसे उन कठमुल्लों ने उसके मन में भर दी थी, न जाने कैसे करीम साहब के संस्कार उसके कानों से बस निकल ही गये। 16 साल का था कसाब जब वह अचानक गायब हो गया। किसी को नहीं दिखा दोबारा।

हामिद तो चला गया था ट्रेनिंग के लिए। करीम साहब, अपने मित्रों के साथ चाय की दुकान पर चाय पी रहे थे और धार्मिक सद्भाव पर ज्ञान गंगा का प्रवाह संभाले थे कि अचानक, एक बाइक पर सवार दो युवकों की बंदूकों से गोलियों की बरसात हो गयी जो करीम साहब के शरीर को चीरते हुए निकल गयी। एक महान व्यक्तित्व सदा के लिए सो गया था। हामिद को जब यह खबर मिली तो मानो उसके प्राण ही छूट गए। गम के अँधेरे में डूब सा गया था वो। अब उसके दिन और और रातों में बस दर्द था, कुछ और नहीं। खाना बंद कर दिया, उसका शरीर सूखने लगा था। उसके साथियों ने

संभाला उसको, न जाने कैसे। अब उसका लक्ष्य और साफ हो गया था, एकदम साफ। अगले एक साल में हामिद ने 19 अलगाववादी आतंकियों को ज़मीन के ढ़ाई फीट नीचे गाढ़ दिया था। उसकी बहादुरी के किस्से मशहूर हो चले थे। अब वह मेज़र बन गया था, मेज़र हामिद, जिसके नाम से बड़े बड़े आतंकी काँप उठते थे। और आज हामिद के साथ ऐसा कुछ घटने वाला था जो उसने सोचा न था। अपनी बन्दूक लेकर हामिद निकल पड़ा। हाथ सुन्न था, दर्द ऐसा की नर्क कि आग उसके सामने फीकी पड़ जाये। मगर दिमाग में एक ही बात थी, उस गांव में जहाँ ज्यादातर हिन्दू रहते थे, उन पर आक्रमण की तैयारी थी इन अलगावादियों की इसमें कोई शक नहीं था। वैसे भी इन हैवानों में कोई जज़्बात होते ही कहाँ है? कठमुल्लों के भाषण और और अलगाववादी नेताओं की सीख से इनका ब्रेन वाश हो चुका होता है। मासूम बच्चों को भी गोलियों से छलनी कर देते हैं ये राक्षस। अगर ये उस गांव तक पहुंच गए तो फिर उस दिन सभी सीमाएं पार होंगी, फिर ये धरती मासूम बच्चो के खून से लाल हो जाएगी, फिर उन स्त्रियों की पवित्रता को तार-तार कर दिया जायेगा। हामिद के लिए तो यही दोज़ख की तस्वीर थी, जहाँ के ये आतंकी खलीफा थे। आज ये नहीं होगा, हामिद के मन में दृढ निश्चय था। उसके लिए यही उसके जीने का मकसद भी था, करीम साहब आज भी उसमें ज़िन्दा थे। हामिद ने अपने कमांडिंग अफसर को मदद के लिए फोन लगाया। बस 1 शब्द में सब बयां हो गया, उसने फोन रख दिया।

घंटा लगेगा मदद आने में, तब तक अगर कुछ नहीं किया तो नरसंहार हो चुका होगा। हामिद ने जान की परवाह न की। निकल पड़ा वह आज रौद्र रूप धारण करके। सामने तीन लोग दिखे जो धीरे धीरे उस गाँव की तरफ बढ़ रहे थे। हामिद को पता था कि बहुत कठिन होगा ये, उनके पास हथियारों का जखीरा होगा, मृत्यु उसकी लगभग निश्चित थी। एक झाड़ी के पीछे छुप कर उसने निशाना साधा। हाथ काँप रहा था, उस सर्दी में भी पसीने की बूंदे उसके माथे पर झलक रही थीं। बस उसने ऊपर आकाश की तरफ देखा, और एक छोटी सी प्रार्थना की और गोली चला दी। भारतीय सेना के कड़े प्रशिक्षण का परिणाम था, गोली सीधे निशाने पे लगी, एक चीख के साथ वो ढेर हो गया। हामिद ने राहत की सांस ली। अब बचे हुए आतंकी पीछे मुड़ कर उसकी तलाश में जुट गए। हामिद को पता था कि यही समय है, सर्वस्व न्योछावर कर देने का। उसका जैसा नाम था, वैसा ही काम करने जा रहा था वो, शहीद अब्दुल हामिद के पदचिन्हों पर चलने को तैयार था। मृत्यु का भय सबसे बड़ा भय होता है, परन्तु वह उससे आगे निकल पड़ा था। मौत अंतिम सत्य है नहीं मौत से भी क्यों डरें, आकाश में दहाड़ चुका था जैसे वह। उठा और अपनी बन्दूक से गोलियाँ चला दी। आतंकी सन्न थे, गोलियाँ सीधे एक आतंकवादी के सीने पर लगी, गिर पड़ा वह कटे वृक्ष की तरह धरातल पर। दूसरे ने गोली चला दी हामिद पर जो उसके पैर पर जा लगी। पर वह नहीं डिगा, जो उसके सामने खड़ा था, उस पर उसने बन्दूक तान दी, उसकी आंखें देख कर न जाने क्यों हामिद का दिल दहल गया, पर उसने गोली चला दी और सामने खड़ा आखिरी अलगाववादी भी यमलोक पहुंच गया।

हामिद ने अपना काम कर दिया था, पर अब दर्द ने सीमाएं पार कर दी थी, एक गोली हाथ में और एक गोली पैर में लगी थी मगर देश के दुश्मनों को हमेशा के लिए सुला देने की खुशी उस दर्द पर हावी हो गयी। अचानक पता नहीं क्यों उसके मन में उन तीन लोगो को देखने की इच्छा आ गयी। पता नहीं किसी चुम्बक की तरह वह खिंचा चला गया अपने शिकारों की तरफ। पतला सा वो मृत शरीर, जिसके एक हाथ में पिस्तौल थी और दूसरे में ग्रेनेड, उल्टा पड़ा था। हामिद ने उसका चेहरा अपनी तरफ ज्यों ही किया, मानो उसके लिए धरती फट पड़ी, उसकी रूह काँप गयी। दूर से उसकी मदद के लिए पहुंची टुकड़ी की गाड़ी का हॉर्न बजने लगा, पर वह खड़ा रहा, पत्थर की मूरत की तरह, और ताकता रहा एक टक, उसकी आँखें। उसकी आँखों में देख रही थीं, इसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे पर कुछ तो था उन आँखों में, एक गहरा रिश्ता था, उसके सामने उसका भाई कसाब मरा हुआ पड़ा था। ●

समृद्ध जोशी, छात्र

तपो दमो ब्रह्मवित्तं विताना:
पुण्या विवाहा: सततान्नदानम्
येष्वेवैते सप्त गुणा: वसन्ति
सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि।।

विदुर जी बोले-जिनमें तप, इन्द्रिय संयम, वेदों का स्वाध्याय, यज्ञ पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार-ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान उत्तम कुल कहते हैं।

संग्रह-स्रोत- विदुर नीति

जीवन के आईने में
कभी यूँ ही जब झाँका मैंने
अतीत की परछाइयों और
उम्र के पड़ावों को
उभरते हुए पाया मैंने।
जीवन के आईने में, कभी यूँ ही जब झाँका मैंने। 1

गर्मियों की छुट्टियों की
खुशियाँ तब छोटी सही,
अब बड़ी-बड़ी खुशियों को
उनसे कमतर पाया मैंने
जीवन के आईने में कभी यूँ ही जब झाँका मैनें। 2

त्यौहारों में मिलने वाले
तोहफों की सौगातें
बधाई देने वाले जब
बिन बुलाये घर आते,
खुशियों की चादर में
सुनहरे लम्हों के बूटे संजोये मैंने।
जीवन के आईने में, कभी यूँ ही जब झाँका मैंने।3

बारिश का पानी कागज की कश्ती
किस्से ये पुराने सही
पर बहती उस कश्ती को
अपनी ओर आते पाया मैंने।
जीवन के आईने में कभी यूँ ही जब झाँका मैंने।4

दोस्तों की अपडेट जब
अप टू डेट रहती थी
बिछुड़ने का गम न था
दोस्ती बहुत ग्रेट थी,
व्हाटस अप फेसबुक का तब जाल न था
पर दोस्तों में फिर भी कोई कंगाल न था
अब आलम ये कि महफिल में
सबको तन्हा पाया मैंने
जीवन के आईने में, कभी यूँ ही जब झाँका मैंने। 5

सुनते हैं तूफानों में
आसरा साहिल देते हैं
पर बचपन के मस्ताने तूफानों को
जवानी के संजीदे आसरे से बेहतर पाया मैंने।
जीवन के आईने में, कभी यूँ ही जब झाँका मैंने।

श्वेता सचान

मैं अपने आप को बहुत भाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे 'भारत आभार पर्व ग्रुप' के साथ पुँछ में जाकर वहाँ जवानों को धन्यवाद देने का व उनके साथ रक्षाबंधन मनाने का अवसर प्राप्त हुआ। देव पूजा, के साथ देश पूजा यह इस ग्रुप का मंत्र है।

बात है 28 जुलाई, 2017 की। रात को उत्तम नगर दिल्ली से सात बस में 300 के आस-पास पूरे भारत भर से आये हुए यात्री रवाना हुए। मैं दूसरे दिन दोपहर में उनके साथ जम्मू से जुड़ी। कश्मीर की खूबसूरत वादियाँ उन दिनों हरी चादर ओढ़े थी, हवाओं में सौंधापन लिए वहाँ का नैसर्गिक सौंदर्य अपने पूरे निखार पर था। सारे यात्री इस वातावरण में प्रफुल्लित, उत्साहित वह देशप्रेम से सराबोर थे।
धर्म स्थानों के बहुतायत होने के कारण श्रावणमास में पूरे जम्मू में यात्रियों को सीमा सुरक्षा बल द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाती है। पाकिस्तान से यह भूमि सटी होने के कारण अचानक कब, क्यूँ और कहाँ बर्मों की वर्षा शुरू हो जाये इसका अंदाजा नहीं लगाया जा सकता इसलिए (श्रावण मास छोड़) अन्य समय में यात्रा करना असंभव है। इन दिनों स्थानीय व उनके साथ पंजाब-हरियाणा से लोग आकर जगह-जगह लंगर लगाकर यात्रियों के खाने-पीने की व्यवस्था करते हैं। साथ में प्राथमिक दवा-सुविधा व सूचना-केन्द्र भी होते हैं। यह उनका सेवाभाव अतुलनीय है। आश्रम और मठों में यात्री-निवास का सामुदायिक प्रबंध होता है।

इस सीमान्त पर्यटन यात्रा का उद्देश्य राजौरी व पुँछ क्षेत्र में सदैव तत्पर सुरक्षा प्रहरी हमारे सैनिकों को धन्यवाद देना और वहाँ के हिंदुओं का मनोबल बढ़ाना है जो कि केवल 10 प्रतिशत से कम पर सिमट गये हैं। साथ ही वहाँ के परिसर में स्थित श्रद्धा स्थानों का दर्शन करना और हिंदुओं के दुकानों से खरीददारी कर उनके सालभर के कमाई में परोक्ष रूप से मदद करना है।

अखनूर, सुन्दरवनी व नौशेरा होते हुए यात्रा में हमारा पहला पड़ाव राजौरी में स्वामी बाबा विश्वात्मानंद जी के आश्रम में था। पुरुषों व स्त्रियों के लिए अलग-अलग व्यवस्था थी। प्रात की मंगल बेला में प्रार्थना व भजनों के साथ जागरण के बाद लंगर में स्वादिष्ट भोजन (पूरी, राजमा, आलूझोल, चावल व हलवा) बड़ी आत्मीयता से परोसा गया। तृप्त होकर हम सब पुँछ के लिए चल पड़े।

पूरे प्रवास में यात्री, भक्ति व देश-प्रेम से ओत-प्रोत गाने गा रहे थे।

जहाँ-तहाँ बॉर्डर फोर्स के जवान दिखते तो उनका अभिवादन नारे लगा कर करते, जय जवान, जय भारत माता का वीर जवान, जय हिंद, जय हिंद की सेना और भारत माता की जय इत्यादि जवान भी प्रत्युत्तर में अभिवादन करते या हाथ हिलाते। पूरे प्रवास में कल-कल करती पुलस्त्य नदी भी साथ-साथ बह रही थी। ऋषियों में से पुलस्त्य ऋषि रावण के दादाजी थे, उन्होंने इस क्षेत्र में साधना की थी इसलिए उनके नाम से इस नदी का नाम पुलस्त्य पड़ा है।

पुँछ के रास्तों में सुरण कोट के निकट एक चौराहे पर, पूर्व सूचना अनुसार कुछ दिन पूर्व हुए आतंकी हमले में शहीद जवानों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हमारा काफिला आगे चला। शाम को पुँछ के दशनामी अखाड़े में रहने की व्यवस्था की गई थी। विशाल स्थायी पंडाल में सामूहिक व्यवस्था के तहत जमीन पर गद्दे बिछाए गये थे व रजाईयाँ दी गई थीं।

जहाँ तक नजर जा रही थी वहाँ तक यात्री ही यात्री थे। उस समय भारत के अलग-अलग प्रांत से आए हुए करीब 2000 लोग वहाँ रुके थे। दूसरे एक निकटतम भव्य पंडाल में लगातार भोजन और चाय-नाश्ते की व्यवस्था थी। मैंने देखा की 8-10 औरतें सतत् बर्तन माँज रही थीं। अनवरत खान-पान चल रहा था। लोगों का सेवा भाव देखकर मैं नतमस्तक हो गई। खचाखच भरे पंडाल में भी वातावरण प्रसन्न था। हर एक टोली अपने में मस्त थी। एक तरफ म्यूजिक पर सारे लोग थिरक रहे थे, उनमें से बहुत से दिल्ली से आए उद्यमी थे, आईएएस

ऑफीसर थे और भी कई व्यवसायी लोग, अपनी पहचान भुला के फिल्मी अंदाज में बज रहे भजनों पर नाच रहे थे। मैं भी भाव विभोर उसमें कब शामिल हो गई, पता ही नहीं चला। मानो सारा आसमाँ एक प्रसन्न वातावरण में डूब गया हो....और व्यक्ति-व्यक्ति की अलग अपनी पहचान खो गई हो व पूरा जनसमुदाय चेतनामय हो गया हो।

देर शाम हम कुछ लोग पुँछ शहर में घूमने गए। हाँलाकि इधर-उधर घूमने की अनुमति नहीं थी परंतु दिल्ली से जो दूसरी बार यहाँ आए हुए थे उनको परिस्थिति का थोड़ा अंदाजा था। Cross-Loc centre (2008 स्थापित) देखने के लिए गए। वहीं पर 200 मीटर की दूरी पर पाक सीमा है। उस सेंटर के अंदर हमें आने नहीं दिया गया, बताया गया कि अजनबियों को अंदर देखकर सीमापार से तुरंत गोलाबारी हो सकती है। हमने भी अंदर जाने का दुस्साहस नहीं किया। बाहर पाक-सीमा में घुसकर फोटो खींचकर तुरन्त वहाँ से निकले। मन में डर भी था। पास में स्थिति डेहरी साहब गुरुद्वारा में गए। वहाँ के मुख्य द्वार पर हमारा बहुत सम्मानजनक स्वागत हुआ। सभी महंत वहाँ के जन-जीवन के उत्थान व विकास के लिए लालायित दिखे, सभी शिक्षा क्षेत्र से जुड़े थे। शिक्षा को लेकर कुछ भविष्य में आदान-प्रदान हो, इस विषय में उनसे विस्तार में चर्चा हुई। चाय-नाश्ता खिलाकर उन्होंने हमें बड़े प्यार से विदा किया। यह गुरुद्वारा स्थानीय लोगों के लिए कठिन परिस्थिति में भुक्कम आधार है। पाक सीमा से सटा हुआ होते हुए भी दमखम से निडरता से वह गुरुद्वारा पिछले 200 वर्षों से वहाँ स्थित है, यह सोचते हुए मेरे रोंगटे खड़े हो गए। नतमस्तक होकर हम गुरुद्वारे से लौटे। रास्ते में स्थानीय लोगों से बात हुई, विशेषत: हिंदू महिलाएं निडरता से बात कर रही थीं, बहुत से लोग तो आँखें चुरा रहे थे। हिंदुओं का जीवन वहाँ कितना दूभर है, किसी भी योजना का लाभ दूसरे समुदाय के लोग उन तक नहीं पहुँचने देते रोजमर्रा की जिंदगी में भी उनपर कैसे अत्याचार होते हैं, इस स्थिति का अंदाजा ही भयानक था। हिंदुस्तान में हिंदुओं को ही लाचारी से जीना व बर्बरता का शिकार होना पड़ता है यह एक विदारक विडम्बना है।

रात्रि के पंडाल में सांस्कृतिक कार्यक्रम के तहत स्थानिक यात्रा संघ के अधिकारियों का सम्मान किया गया। शहीद जवानों के पत्नियों का भी सत्कार किया गया। उसके पश्चात दिल्ली से पधारे ज्ञानजी म्यूजिक ग्रुप के साथ सारा माहौल भक्तिमय हो गया।

1 अगस्त 2017, तीसरे दिन सुबह मंडी पुँछ के लिए बसें रवाना हुई। बूढ़ा अमरनाथ मंदिर के पास स्थित 137 बटालियन के सीआरपीएफ जवानों से मिलने के लिए हम सभी बेताब थे। जीवन पर्यन्त कर्तव्य जिनका ध्येय वाक्य है..उन जवानों से मिलकर उनके साथ आनंद के कुछ पल बिताकर लगा जैसे जीवन सार्थक हो गया।

जीवन पर्यन्त कर्तव्य

पुँछ सीमा

आभार पर्व कार्यक्रम

पुँछ में जवानों के साथ

'भारत आभार पर्व' के अंतर्गत जवानों का धन्यवाद किया गया। इन प्रहरियों की अनवरत सेवा से, इनकी मुश्तैदी से एलओसी पर सतर्क रहने की वजह से ही हम सब भारतवासी चैन की नींद सो सकते हैं। इस यात्रा के पूर्व एक अभियान चलाते हुए देशभर से सैनिकों के लिए संदेश इकट्ठा किये थे जो उन्हें आभार के तौर पर सौंपे गए। जवानों को रक्षा सूत्र बाँधते हुए मेरी आँखों से आँसू छलक रहे थे, एक प्रकार का आत्मिक संतोष मिल रहा था। इस रक्षाबंधन पर्व की यादें मेरे जेहन में सदैव ताजी रहेंगी। ●

श्रीमती अंजली विश्वास कुलकर्णी

मन

आज फिर विवश हुआ है मन

देखकर अपना खाली जीवन

कुछ तो सोच रहा इस पल

मन में ख्याल तो कई आते हैं

कुछ तो हमको हर्षाते हैं

पर कुछ मन को तरसाते हैं

कुछ खालीपन भर जाते हैं

कुछ सूना मन कर जाते हैं

ठीक उसी तरह जैसे जीवन में

कई लोग हमें मिल जाते हैं

कुछ दुख हरकर ले जाते हैं

कुछ दर्द हमें दे जाते हैं

पर हमें शिकवा नहीं है उनसे

ना ही सिला है इस जीवन से

हम तो हैं बस उड़ते पंछी

हाथ किसी के कब आते हैं

हर गम को हम भूल कर अपने

जीवन पथ पर बढ़ जाते हैं

कहीं मिलिंद बैठ मंजरी पर

मधुरस बनाया करते हैं

कहीं देख के चमक चपला की

मेघ, नीर बरसाया करते हैं

और पखेरू देख के वारी

नव नीड़ बनाया करते हैं

बस यही देख मेरे मन में भी

कई ख्याल आ जाते हैं

कुछ खालीपन भर जाते हैं

कुछ सूना मन कर जाते हैं।

प्रियंका रानी

आदर्श जीवन–मेरे मत में

कुमार आदर्श रत्न नवजात के नामकरण उत्सव पर बुआ ने उसके कान में यही नाम बताया था ।
आगे चलकर क्या वो आदर्श पुत्र, पति, पिता या आदर्श नागरिक बना?
या फिर सारी जिन्दगी उसे यह सुनना पड़ा ----
" अपने पिता की तरह नहीं बन पाया !"
"अपने बड़े भाई से ज्यादा होनहार निकला!"
-------- इत्यादि इत्यादि ....
तो क्या उसके पिता आदर्श पिता या पुत्र या पति थे? या फिर उसका बड़ा भाई, जो ओहदे में उससे कम था पर स्वाभाव में कहीं अधिक विनम्र, एक आदर्श नागरिक नहीं था ?

आदर्श शब्द का क्या तात्पर्य है?

यह विशेषण वस्तुत: उस अवस्था के विषय में बताती है जो परिकल्पित है और उस परिकल्पना के आधार पर श्रेष्ठतम है जिससे श्रेष्ठतर अन्य कोई भी स्थिति असंभव है और जिस तक सभी व्यक्ति पहुंचने के प्रयास में जुटे रहते हैं ।

इस नाम के पीछे सम्भवत: उम्मीद की एक किरण स्पष्ट दिखाई देती है चाहे वो इंसान हो या उद्योग या शिक्षण संस्थान सभी को ये आशा रहती है –वो उत्तम ही होगा व्यवहार में, आचरण में, कार्यशीलता में या फिर सेवा प्रदान करने में।
उदाहरणार्थ-एक आदर्श लॉन्ड्री से आप यही उम्मीद रखेंगे कि आपके कपड़े, शिकायत का मौका दिये बिना, अच्छे से धुलकर, समय पर वापस मिल जाएँगें !!
इसी तरह आदर्श शिक्षा निकेतन, आदर्श किराना भंडार आदि के साथ भी यही अपेक्षा जुड़ी रहती है।

इस पृथ्वी पर हर कोई स्वस्थ रहे, कोई भूखा न हो, सब के तन पर कपड़े हों, सर पर छत हो और अच्छी शिक्षा मिले तो वो आदर्श स्थिति होगी । न कोई ईर्ष्या न द्वेष, न द्वन्द हो। पर्यावरण कलुषित न हो। वस्तुत:, आदर्श जीवन काल्पनिक ही नहीं परन्तु यह व्यक्ति, आयु और स्थान सापेक्ष है।

एक नन्हे शिशु के लिए आदर्श जीवन है स्वस्थ रहना, भूखा न सोना और माँ का हमेशा पास होना। वैसे ही एक विद्यार्थी का आदर्श जीवन है हर परीक्षा में अच्छे अंक के साथ उत्तीर्ण होना। एक खिलाड़ी के लिए फिट रहना और हर प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करना ही आदर्श जीवन है।

एक गृहस्थ चाहता है उसका परिवार खुश रहे, स्वस्थ रहे और कोई कमी न हो। वृद्धावस्था में रोगों से दूरी और एक जैसी सोच रखनेवालों से खुलकर बातें कर पाना ही आदर्श जीवन है।

मूलत: हर मनुष्य के लिए परेशानियों से दूर, स्वस्थ, सबल, सुन्दर जीवन ही आदर्श जीवन है परन्तु, सोचा जाए तो, हर दिन एक जैसा सामान्य हो तो कुछ समय पश्चात् जीवन उबाऊ हो जायेगा और फिर " खाली दिमाग शैतान का घर "।

अत: आदर्श कल्पनामात्र नहीं बल्कि उसे सार्थक बनाने के लिए हमारा निरंतर प्रयास, बिना कोई गलत कदम उठाये, ही जीवन में जोश बनाये रखेगा और वो ही आदर्श जीवन होगा ।

डॉ. अंजना पोद्दार

एक संपन्न व्यक्ति प्रसिद्ध स्वाधीनता सेनानी गोखले जी से मिलने पहुँचा। उन्हें अपना फटा कुर्ता सिलते देख वह बोला–आप जैसा महान नेता कपड़े सिलने में अपना समय नष्ट क्यों कर रहा हैय गोखले जी ने उत्तर दिया– मैंने अपनी पाई-पाई बचाकर देश की स्वाधीनता हेतु हो रहे प्रयासों में लगाने का संकल्प लिया है तो यहाँ बचे पैसे उसी कार्य में इस्तेमाल होंगे। साथ ही सुंदर कपड़े पहनकर कोई महान नहीं बनता, व्यक्ति के कर्म उसे श्रेष्ठ बनाते हैं। जहाँ तक स्वयं यह कार्य करने का प्रश्न है तो कोई कार्य छोटा–बड़ा नहीं होता। ये शब्द सुनकर वह व्यक्ति नतमस्तक हो गया।

माँ

समय बीतता गया। निर्मला व्यग्र होती गई। समस्या का हल नहीं मिला, मिली केवल खीज। कह उठी - वह कलंकिनी है। अपनी संतान के भविष्य से उसे अपना भविष्य ज्यादा प्यारा है। कर्तव्य से अधिक वासना उसे प्रिय है। उसी के लिए उसने अपने ही रक्त, अपनी ही आत्मा के एक अंश को तिरस्कृत किया है। अपनी ही संतान के जीवन को कुचल दिया है। वह कलंकिनी नहीं तो और कौन है?

सहसा जैसे उसकी संज्ञा लौटी। पाया कि वह घुप्प अंधकार में पलंग पर अकेली लेटी है। दूसरे पलंग पर पति प्रगाढ़ निद्रा में बेसुध हैं। चकित-विस्मित घबराई सी उठ बैठी। एक क्षण उस घुप्प अंधकार में झाँका, फिर न जाने क्या हुआ, वह सुबक उठी, इतनी की पति अमरनाथ जाए गए। अनबुझ से बोले, 'निमी, निमी। सपना देख रही हो?'

निमी काँपी-सकपकाई। फिर सँभलकर बोली, हाँ, बड़ा भयानक सपना था। देखा कि मैं छोटी सी बच्ची हूँ। माँ ने मुझे अथाह जल में फेंक दिया है और एक मगर मुझे निगलने के लिए लपक रहा है।'

पति बोले, 'स्वप्न सचमुच भयंकर है, पर निमी, कहते हैं, भयंकर स्वप्न सदा सुखदायी होते हैं।'

'सच'?
पति एकाएक पूछ बैठे, ''निमी। तुम्हें माँ की बहुत याद आती है?'
निमी फिर आपादमस्तक सिहरी। बोली, 'नहीं, नहीं।'

लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को धोखा देती हुई वह फिर सुबकने लगी। बाँध जैसे एकाएक टूट गया हो। अमरनाथ घबरा उठे। निमी को अंक में भर लिया। कहा, 'तुम्हें दुःख होता है? अब न कहूँगा।'

निर्मला मौन-शिथिल हो पति की गोद में गिर पड़ी। वह उसे सहलाते रहे। प्रकृति रूप बदलती रही। कहीं पड़ोस में गाय रंभा उठी। चिड़ियों ने प्रातः संगीत आरंभ कर दिया। अमरनाथ बोले, 'निमी, उठो। दिन निकल आया।'

निमी हड़बड़ाकर उठी। फिर पति को देखकर लजा आई। रात की घटना सचमुच जैसे स्वप्न बनकर रह गई हो। दोनों अपने-अपने काम में लगे। दस बज गए। पति दफ्तर चले गए, लेकिन निमी क्या करे? वह तो भरी पड़ी है और उसी भरेपन में वह खो-खो जाती है। उसी खीज में सहसा कह उठी, 'काश! मैं मर पाती।...' लेकिन सुनने के लिए वहाँ कोई नहीं था। देर तक उस घुप्प मौन में वह सोचती रही। फिर अपने बक्से में से एक पत्र निकालकर पढ़ने लगी...।

स-आभार

श्री विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून 1912 को मीपापुर, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा पंजाब में हुई। उन्होंने सन् 1929 में चंदूलाल एंग्लो-वैदिक हाई स्कूल, हिसार से मैट्रिक की परीक्षा पास की। तत्पश्चात् नौकरी करते हुए पंजाब विश्वविद्यालय से भूषण, प्राज्ञ, विशारद, प्रभाकर आदि की हिंदी संस्कृत परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से ही बी.ए. भी किया। विष्णु प्रभाकर जी ने कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, निबंध, एकांकी, यात्रा-वृत्तांत आदि प्रमुख विधाओं में लगभग सौ कृतियाँ हिंदी को दीं। आपको भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा मूर्तिदेवी पुरस्कार सहित अनेकों पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

विष्णु प्रभाकर जी आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रकाशन संबंधी मीडिया के विविध क्षेत्रों में पर्याप्त लोकप्रिय रहे। देश-विदेश की अनेक यात्राएं करने वाले विष्णुजी जीवन पर्यंत पूर्णकालिक मसिजीवी रचनाकार के रूप में साहित्य-साधनारत रहे।

'...नहीं जानती, तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ। जी में आया कि तुम्हें उसी संबोधन से बुलाऊँ, लेकिन तभी याद आ गए तुम्हारी दीदी के वे शब्द, जो गलत नहीं हैं, पर जिन्हें मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता। मुझपर क्या बीतती है, कैसे बताऊँ? शायद तुम एक दिन उनका अर्थ समझ सको? पर तब तक क्या मैं बच सकूँगी?

जिस पवित्र और प्यार भरे संबोधन को मैंने कलंकित किया बताया जाता है, उसके रहते स्नेह और वात्सल्य की बात क्या कोरी विडंबना के अतिरिक्त कुछ और लग सकती है? जैसे वेश्या के मुँह से सतीत्व का गुणगान। डाकू द्वारा करूणा और प्रेम की व्याख्या। मैं तुमसे प्रेम की बात करूँ? उसका अर्थ होगा कि मैं तुम्हें पथभ्रष्ट करना चाहती हूँ। विश्वास करो, मैं कैसी भी क्यों न हूँ, पर यह नहीं चाह सकती कि मेरे कारण तुम्हें कष्ट हो।

तुम पूछोगी-तो फिर यह पत्र क्यों? अतीत को जीवित करने से क्या लाभ? काश, मैं अपने आपको वश में रख सकती।! नारी दुर्बल है, लेकिन क्या दुर्बलता का यह इतिहास ही मनुष्य का इतिहास नहीं है।? काश, कोई मेरे भीतर झाँक सकता...

नहीं, नहीं, अब और नहीं…'सरस्वती'

निर्मला बार-बार इस पत्र को पढ़ती है। नए-नए अर्थ खोजती है, लेकिन सूझती है केवल एक बात। जिस स्नेह की दुहाई इस पत्र में है, वह अब तक क्यों नहीं उफना-उबला? क्यों मेरे जीवन में काँटे बोकर उसने अपने उपवन में फूल खिलाए? नहीं, नहीं, यह ढोंग है, दंभ है। स्नेह की यह तरलता व्यर्थ है, व्यर्थ है …।

इतना क्रोध उमड़ा कि पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। चूल्हे में डाल दिए। क्षण भर में अक्षर इधर-उधर बिखर गए, लेकिन निर्मला की स्मृति क्षार नहीं हुई। याद आ गया उसे बचपन। याद आ गई पिता की मनुहार, माँ का तरल स्नेह। उसकी अपनी निर्दोष खिलखिलाहट और उसमें डूबती माता-पिता की निर्मुक्त-निर्बाध हँसी…।

पिता दूर कहीं इंजीनियर थे। सहसा एक दिन समाचार आया कि वे दिवंगत हो गए। क्षण भर में मौत की मनहूस छाया उनके सुख को निगल गई। दादा, दादी, माँ-सब हाहाकार कर उठे। वह बार-बार पूछती, ' माँ पापा कहाँ गए? और माँ थी कि रोए चली जा रही थी…।

उसे यह भी याद था कि लगभग एक वर्ष बाद उसके दादा ने अंदर आकर माँ के पैरों पर अपनी टोपी रख दी थी। माँ अनबूझ सी सकपकाई। टोपी उसने उठा ली। दादा रोते-रोते कहते रहे, 'बेटी, अब तू ही मेरे लिए बेटे के समान है। मेरी लाज तेरे हाथों में है…।

फिर अचानक एक दिन उसने सुना, उसकी माँ भी चल बसी। वह हतप्रभ रह गई। किसी रिश्तेदार के यहाँ गई थी। वहीं से लौटकर उसने दादा, दादी को रोते देखा। दादी ने उसे छाती में भर लिया, लेकिन निमी तो अब बड़ी है। वह जानती है कि आज न तो घर में हाहाकार है, न आने-जानेवालों की भीड़। एक मनहूसियत सी छाई है। दादा बार-बार सिर पीट लेते हैं। बोलते नहीं। दादी पागलों की तरह इधर-उधर दौड़ती है। बोलती वह भी नहीं। निमी सोचती है-आखिर इन सबका अर्थ क्या है…। और इसी अर्थ की खोज करते हुए वह पाती है कि दादा बीमार हो गए हैं। चुपचाप वह उनके पास बैठी रहती हैं। दादा बार-बार चौंककर पुकार उठते हैं, 'निमी बेटा!'

निमी बोलती है, 'हाँ दादा।'

'बिट्टो।'

और फिर आँखों से अविरल अश्रुधारा बह जाती है। शब्द खो जाते है…। और एक दिन दादा भी मौन हो जाते हैं। एक-एक करके हकीम, वैद्य और डॉक्टर आते हैं तथा सिर हिला-हिलाकर चले जाते हैं। जीवन-दीप धीरे-धीरे मंद होता है। अंतिम बार आँखें खोलकर चारों ओर देखते हैं। पुकारते हैं। 'निर्मला।'

निर्मला अपना सिर उनकी छाती पर रख देती है और उसी को सहलाते-सहलाते वह दीपक सदा के लिए बुझ जाता है।

स्मृति-पटल पर प्रकाश और भी तीव्र होता है। माँ के बारे में वह नाना प्रकार की बातें सुनती है। उसकी सखी-सहेलियाँ तरह-तरह की बातें करती हैं। एक कहती है, 'मेरी माँ भी नहीं है।'
'मरी नहीं तो कहाँ गई?'

दूसरी मुँह बनाकर कहती है, तेरी माँ वेश्या है।'

अबोध निर्मला कुछ नहीं समझती। आकर दादी से कहती है। दादी धक् से रह जाती है। मुख विवर्ण हो जाता है। निमी जैसे डर जाती है, -दादी, क्या मेरी माँ जिंदा है?'

दादी एकाएक क्रोध से उफन उठती है, 'खबरदार, जो उसका नाम लिया। कौन कहता है कि वह जिंदा है? वह मर चुकी है। कभी की मर चुकी है। बिलकुल मर चुकी है।'

और इसी आवेश में दादी भागी चली जाती है। निर्मला पागल सी, हतप्रभ सी रोने लगती है। रोते-रोते देर हो जाती है तो दादी आकर उसे छाती से लगा लेती है, 'बस बेटी, मैंने उनको डाँट दिया। कोई तुम्हें कुछ नहीं कहेगा. ..।

लेकिन वह क्या सदा अबोध रह सकती थी? एक दिन वह बड़ी हुई और एक दिन दादी ने एक-एक करके सारी बातें उसे बता दीं। उसे खूब याद है-वह न चौंकी थी, न काँपी थी। केवल मन पर एक बोझ था, जो उतर गया। और माँ के लिए जो स्नेह था, वह घृणा में बदल गया। आज भी वह यह सब सोचती है और अंतर में तीव्र नागिन की तरह फन उठाकर फुँफकारती है। कभी कहीं एक बहुत धीमा स्वर मुखर होता है, 'कुछ भी हो, माँ तुम्हें प्यार करती है।'

दूसरे ही क्षण वह तीव्र हुँकार से हिल जाती है-नहीं, नहीं, प्यार नहीं करती। करती तो क्या मुझे तिरस्कृत, अपमानित होने के लिए छोड़ जाती? क्यों...।

इस क्यों का विश्लेषण करते-करते उसका हृदय पाश-पाश हो उठता है। वह ठीक-ठीक सोच नहीं पाती कि फिर दिन बीत जाते हैं, कि फिर अमरनाथ उसे एक पत्र लाकर देते हैं। पूछते हैं, 'निमी, इनकी पहली चिट्ठी का जवाब नहीं दिया तुमने। खत का जवाब जरूर देना चाहिए। सोचती होगी कि विवाह कर निर्मला मगरूर हो गई है।'

सुनकर धक्-धक् करती निमी बरबस मुस्कुराती है, 'मेरी यह सखी ऐसी-वैसी नहीं है। मुझे जानती है। फिर भी मैं कल जवाब दूँगी।

अमरनाथ हंस पड़ते हैं।

पत्र में लिखा था-
'पहला पत्र पढ़कर तुमने सोचा होगा कि कैसी विडंबना है। जन्म भर जिसने ठोकरें मारी, वही आज स्नेह का अधिकार जताती है। सोचती हूँ, मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया। मैं तुम्हारे जीवन में नहीं आऊँगी, लेकिन क्या करूँ? दो घटनाएँ ऐसी हुई कि मैं विवश हो गई। अभी उस दिन मेरा दूसरा लड़का ज्वर में संज्ञा खो बैठा था और उस संज्ञाहीनता में केवल 'माँ, माँ' ही पुकारता था। तब न जाने कैसे मुझे यह खयाल आ गया था कि तुमने भी कभी ज्वर में संज्ञा खोई होगी और 'माँ, माँ' पुकारा होगा। बहुत से बच्चों की माँ मर जाती हैं। सुना कि तुम्हारी माँ भी मर गई, लेकिन मैं देखती हूँ कि मेरे उस बच्चे का रूप एकाएक बदलने लगता है और उसके स्थान पर तुम आ लेटती हो। उस वक्त मेरी क्या हालत हुई, नहीं बता सकती। शब्द बता भी नहीं सकते। शायद तुम समझ सकती हो, लेकिन अभी रहने दो। दूसरी बार कह दूँ। अगले दिन पंडितजी बच्चे की गृह-शुद्धि करने आए। न जाने क्यों उन्होंने मेरा हाथ देख लिया। बोल उठे-वर्षों से एक कामना तुम्हारे मन में है, वह अब पूरी होनेवाली है...।

मेरा हृदय धक्-धक् कर उठा। मैं चाहने लगी कि यह धक्-धक् अमर हो जाए। सच जानो, मैं तुम्हारे शांत जीवन में अशांति पैदा करना नहीं चाहती, लेकिन न जाने क्यों, ये दोनो घटनाएँ अथाह सागर में डूबते हुए प्राणी को जीवन-नैया की तरह लगीं। और मेरी 'दुर्बलता' मुझे तुम तक खींच ले गई। तो भी मैं विश्वास दिलाती हूँ कि यदि तुम मुझे एक बार भी लिखोगी कि तुम मुझसे नफरत करती हो तो मैं फिर तुम्हें कभी परेशान नहीं करूँगी...।'

निमी तुरत पत्र का उत्तर लिखने बैठ गई, 'तुम सुनना चाहती हो तो सुना। मैं तुमसे नफरत करती हूँ। सहस्र बार नफरत करती हूँ....।'

तुरत ही इसका उत्तर भी आया-

प्यारी बेटी,

पत्र लिखकर तुमने मुझे चिंतामुक्त कर दिया। तुम मुझसे नफरत करती हो, लेकिन नफरत प्रेम का ही तो एक रूप है। उसी प्रेम के बल पर मैं आज तुम्हें सहज भाव से 'प्यारी बेटी' कहकर पुकार सकी हूँ। तुम्हारी जननी हूँ। यह सत्य अनहोनी नहीं हो सकता। जननी का यह पद मैंने प्रेयसी के माध्यम से पाया था। उस माध्यम से मैं इनकार नहीं करती। इसीलिए कलंकिनी और पापिनी बनी, परंतु तुम्हें अलग करके प्रेयसी बनने की चाह मेरे दिल में कभी नहीं थी। केवल यही बताने के लिए मैंने यह पत्र लिखा है। नारी के अंतर में उसके अनेक रूप हैं। उन सबको मिलाकर ही वह एक है। एक को खोकर वह खंडिता ही हो सकती है। इसलिए प्रियतम की होकर भी मैं तुम्हारी जननी हूँ। बनी रहूँगी।

तुम्हारे दादा-दादी ने मेरे साथ जो कुछ किया, उसकी निंदा नहीं करूँगी, परंतु वे नारी को पहचान न सके। तुम मेरी पुत्री हो, नारी भी हो। सहज भाव से तुमसे बात कर सकती हूँ। वे चाहते तो मैं अपने प्रियतम को पाकर भी उन्हीं की रहती, परंतु वे दकियानूसी परंपरा से मुक्ति न पा सके।'

पत्र पढ़ लिया। आश्चर्य! मन में विषाद था, क्रोध नहीं था। इसीलिए आँखें सजल हो आईं और दृष्टि जब ऊपर उठी तो सहसा अमरनाथ से मिल गई। अमरनाथ ने धीरे से पूछा, 'क्या बात है निमी?'

निमी एक क्षण हतप्रभ रही। दूसरे ही क्षण उसने वह पत्र पति को दे दिया। उन्होंने उसे पढ़ा। मुसकराए। बोले, 'अरे, तो ये पत्र तुम्हारी सखी के नहीं है?'

निमी ने पलकें उठाकर पति की ओर देखा। वह सजल गंभीर थे। सहसा बड़े वेग का उफान उठा। रोते-रोते तीव्रता से कहा, 'मैं उनसे नफरत करती हूँ, बेहद नफरत करती हूँ।'

अमरनाथ ने बड़े प्यार से निमी को थपथपाया। वह जैसे उनमें समाने के लिए आतुर हो उठी। इसी मौन आवेदन-निवेदन में कई क्षण बीत गए। शांत हुई तो वह बोले, 'निमी, तुमने मुझे पहले ही क्यों नहीं बता दिया?'

निमी सहसा कुछ बोल न सकी। वह बोले, 'मुझपर विश्वास नहीं करती थी?'

निमी एकाएक चीख उठी, 'नहीं, नहीं, यह बात नहीं है।'

तब?'

निमी धीरे-धीरे बोली, 'शायद आप मुझपर शंका करते।'

अमरनाथ ने उसी तरह कहा, 'अब भी करूँ तो?'

'तो मैं आत्महत्या कर लूँगी।'

अमरनाथ की मुसकान कुछ शांत हुई। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उन्होंने कहा, 'निमी, भावुकता बहुत अच्छी चीज नहीं है। अक्सर उलझा देती है। और तुम यह क्यों मान लेती हो कि पुरूष प्रायः नारी पर अविश्वास ही करता है। .....परंतु खैर, जाने दो।'

निमी ने एक झटके के साथ अपने को समेटने का प्रयत्न किया। इसी प्रयत्न में वह अमरनाथ के और पास आ गई। उसके बाद...

कई दिनों तक दोनों ने सप्रयत्न माँ की चर्चा नहीं की। कोई पत्र भी नहीं आया। तभी एक संध्या को अमरनाथ आकर बोले, 'निमी, दिल्ली में मेरे एक अभिन्न मित्र हैं। उन्हीं की माताजी के कहने पर ही तुम मुझे मिली हो। उनके घर में विवाह है। दो-तीन दिनों में वहीं जाना होगा। वहीं से फिर हम दादी के पास देहरादून भी चलेंगे।'

निमी को यह सब बहुत अच्छा लगा। चौथे दिन उसने पाया कि उनका ताँगा दिल्ली में एक मकान के सामने खड़ा है। आवाज देने पर क्षण भर में न जाने कहाँ से आकर चार-पाँच बालकों और युवतियों ने निर्मला को घेर लिया। एक अपरिचिता की भाँति अनबूझ सी वह उनके बीच में खड़ी रह गई। एक युवती ने कहा, 'आओ, आओ जीजी। यह तो तुम्हारा ही घर है।'

दूसरी बोली, 'मेरा नाम कमला है और मैं तुम्हारी बुआ लगती हूँ ये सब तुम्हारे भाई-बहन हैं। प्रभा....प्रमोद....'

निर्मला का मन संकोच-मुक्त हो रहा था। वह मुस्कुराई। बोली, 'इनकी माताजी कहाँ है?'

युवती ने कहा, 'वे सामने के कमरे में लेटी हैं। ज्वर है, इसलिए नहीं आई।' और वह उसे दरवाजे तक ले गई। कहा, 'जाओ, उन्हें प्रणाम कर आओ। तुमसे मिलकर वह बहुत खुश होंगी।'

एकाएक निर्मला झिझकी। फिर जैसे अपने को परिस्थितियों से जोड़कर आगे बढ़ी। देखा-पलंग पर जो नारी लेटी है, वह गतयौवना होकर भी सुंदरी है। रक्तवर्ण मुख, सजल नयन....

सहसा दृष्टि मिली। होंठ फड़फड़ाए। निर्मला बोली, 'नमस्ते। आपकी तबीयत कैसी है?' 'आप... आप ऐसे क्यों देख रही हैं?' '....' 'आप कौन हैं?' 'मैं?' वे उठ बैठी। बोली, 'मेरे पास आओ। आओ ...'

निर्मला यंत्रवत् उनकी ओर बढ़ी। वे हिल उठी थीं। उनके नयन पथरा आए थे। उन्होंने अपने काँपते हाथों से उसको थाम लिया। कहा, 'मैं, मैं तुम्हारी माँ हूँ....।

निर्मला हठात् काँप उठी। उसके मस्तिष्क में जो तुमुल नाद था, क्षण के सहस्रवें भाग में उसने उसे झकझोर दिया। उसे इतना ही याद है कि वह मानो भूचाल से आहत होकर गिरनेवाली थी। तभी किसी ने उसको अपनी बाँहों में थाम लिया। उसने तीव्रता से अपने को छुड़ाना चाहा, पर एकाएक उसका बदन ढीला पड़ता गया। साँस की गति तीव्र होती गई। उसके नयन मुँद गए। और .... जकडन् तेज होती गई, तेज होती गई....

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात।।
माँगने से व्यक्ति का तेज और सम्मान दोनो घट जाता है। बड़े लोग भी छोटे हो जाते हैं। बलि से दान माँगने के लिए विष्णुजी भी वामन (बौने) हो गए थे।

अब्दुल रहीम खानखाना

पापा

पापा मैं तुम्हारी बेटी हूँ!

मैं इस अद्‌भुत संसार को देखना चाहती हूँ

मैं भी तुम्हारा नाम रोशन कर सकती हूँ,

डॉक्टर, इन्जीनियर या सांइटिस्ट बन सकती हूँ,

अगर तुम हिम्मत दोगे तो देश भी चला सकती हूँ,

पापा मैं तुम्हारी बेटी हूँ!

तुम गीत हो हमारे, मैं संगीत बन सकती हूँ,

मैं तुम्हारे साज की सरगम भी बन सकती हूँ,

लता आशा या फिर मैं श्रेया बन सकती हूँ,

मैं तुम्हारे आशीष से दुनिया बदल सकती हूँ,

पापा मैं तुम्हारी बेटी हूँ!

मैं पतंग हूँ तुम्हारी, ऊँचा उड़ सकती हूँ

आकाश पर तुम्हारा, मैं नाम लिख सकती हूँ

चरखी हो तुम मैं डोर बन सकती हूँ,

जितना तुम ढ़ील दोगे, मैं उतना बढ़ सकती हूँ,

पापा मैं तुम्हारी बेटी हूँ!!!

वंदना सिंह

आदर्श जीवन के अंग

संस्कार की राह पे चलकर,
जीवन को आदर्श बना लो ।

परहित को अपना जानो तुम,
धर्म को परामर्श बना लो ।

दिल, जो भी मिलता प्यार से,
वह प्यार से स्वीकार करलो ।

गर बैर रक्खे जो कोई तो,
उनसे भी व्यवहार कर लो ।

हर एक विचार, मानव ही का,
निज व्यक्तित्व का सांचा है ।

पवित्र विचारों को करके ही,
बनता चरित्र का ढांचा है ।

नित खान पान का ध्यान रहे,
व काया को तुम स्वस्थ करो ।

सतसंग जनों का पाकर के ,
हर उचित ज्ञान अंतस्थ करो ।

सब जीवों की रक्षा करके,
सदा उनका भी कल्याण करो ।

सत्य, अहिंसा पालन करके,
फिर जीवन पर अभिमान करो ।

धर्मेन्द्र पटेल, पूर्व छात्र

पुराना भारत

वो लहलहाते से खेत, वो बगीचों में फलों की बहार
वो सरसों की खुशबू, मीठी फुहार अब नहीं दिखती।

वो कच्ची सी सड़कें, वो उड़ती सी धूल चमन की
वो बारिश में सोंधी सी खुशबू अब नहीं दिखती।

वो दो पहिया रिक्शा की सवारी, वो भोली भाली सी नारी
वो सड़कों पे ताँगे की सवारी अब नहीं दिखती।

वो घूँघट में गोरी वो पर्दे में शर्माती सी छोरी
वो चूड़ी की छनछन-पायल की छमछम अब नहीं दिखती।

वो गाँवों की सादगी, पत्तल दोनों में दावत की रंगत।
वो कुल्हड़ में लस्सी, वो मक्के की रोटी अब नहीं दिखती।

वो गलियों में सारे मुहल्ले के बच्चों की मस्ती
बारिश में कागज की कश्ती अब नहीं दिखती।

वो मंदिरों में मन्नत, वो रीति रिवाजों की झाँकी
वो पुरानी सी यादें, मीठी सी बातें, अब नहीं दिखती।

वो बड़े से परिवार, वो दादी, नानी की कहानियाँ
वो संग में सारी खुशियाँ अब नहीं दिखती।

वो बच्चों का शोर, वो बड़ों की डाँट फटकार
वो आपस में प्यार वो बातें अब नहीं दिखती।।

वो ढोल, मृदंग वो ढपली वो मंजीरों की तानें
वो कत्थक, भरतनाट्यम फिल्मों में अब नहीं दिखती।।

ऋषभ चतुर्वेदी, छात्र

लेख

स्वतंत्रता के पश्चात् निश्चय ही भारत ने प्रगति की है ओर चौतरफा कदम बढ़ाए हैं, चाहे वह ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र हो, प्रौद्योगिकी का हो या उद्योग का। परोक्ष रूप से इसका प्रभाव स्वास्थ्य समस्याओं पर भी पड़ा है और इससे स्वास्थ्य के रेखाचित्र में बदलाव आया है। 50, 60 एवं 70 के दशक में भारत के शिशु, विशेषकर नवजात शिशु संक्रामक रोगों और कुपोषण (पोषण की कमी) से जूझ रहे थे। भारत सरकार द्वारा चलाए गए राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम एवं संक्रामक रोग नियंत्रण कार्यक्रम से देश की नवजात शिशु मृत्यु-दर में काफी गिरावट आई है, साथ ही हरित एवं श्वेत क्रांति ने भारत की जीवन प्रत्याशा को 1947 के 31 वर्ष से आज 2015 में 68 वर्ष पर पहुँचा दिया है।

80 के दशक से प्रारंभ हुई प्रौद्योगिकी क्रांति ने भारत को धीरे-धीरे बेहतर जीवन शैली तो दी परन्तु साथ ही साथ इससे होने वाली अन्यान्य स्वास्थ्य समस्याएं (जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा, हृदयाघात, कैंसर आदि) भी प्रदान कीं। इस प्रकार औसत आयु के बढ़ने और जन्म-दर के कम होने के साथ रोगों के रेखाचित्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन (epidemiological transition) आ गया है। हमने जहाँ एक ओर शारीरिक गतिविधियाँ कम कर दीं वहीं नई पीढ़ी पाश्चात्य खान-पान – कोलड्रिंक, पिज्जा, बर्गर, पेस्ट्री जैसे फास्ट फूड की ओर आकर्षित हो गई। सामाजिकता के कम होने और प्रतिद्वंद्विता के बढ़ने से अधिकाधिक लोग आज तनाव और अवसाद के शिकार होते जा रहे हैं। तनाव उपरोक्त जीवन शैली से संबन्धित रोगों (life style disease) को निमंत्रित करने का एक प्रमुख कारण है।

वर्तमान में भारत में 65 मिलियन से अधिक मधुमेह रोगी हैं। यह स्वयं में एक कारण है जिससे भारत में निरंतर हृदयाघात, पक्षाघात, किडनी खराब होने के मरीज बढ़ते जा रहे हैं।

वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति को जागरूक करने की आवश्यकता है कि वह कैसे इस बढ़ती स्वास्थ्य समस्या से बच सके।
इनसे निम्न तरीकों से बचा जा सकता है:

1. हफ्ते में 6 दिन, 40 मिनट का प्रतिदिन शारीरिक व्यायाम जैसे- तेज चलना, साइकिल चलाना, योग व तैराकी।

2. अपने वजन के अनुसार, 20 कैलोरी प्रति किलोग्राम का औसत भोजन करें।

3. पाश्चात्य खान-पान, शराब, धूम्रपान, तम्बाकू आदि का सेवन न करें। ऐसा पाया गया है कि न केवल भारत में अपितु विकसित देशों में भी धूम्रपान मृत्यु के कारकों का एक प्रमुख घटक है।

4. 40 वर्ष की आयु के पश्चात निरन्तर प्रतिवर्ष स्वास्थ्य की जाँच-पड़ताल करायें तथा चिकित्सक की सलाह पर अमल करें। अपने चिकित्सक पर विश्वास रखें।

5. कार्य एवं मनोरंजन में सामंजस्य रखें। मैंने प्राय: देखा है कि कार्य पर बहुत अधिक ध्यान और मनोरंजन जैसे- मित्रता, सैर सपाटा, साहित्य का अध्ययन, सिनेमा देखना, संगीत का आनंद लेना आदि का अभाव व्यक्ति में अवसाद का एक कारण बन जाता है जो अनेक प्रकार के रोगों को जन्म देता है।

6. अपने शौक जरूर पूरा करें।

डॉ.एस के मिश्रा

विचार

संवेदनशून्य विज्ञान सामाजिक पाप है। महात्मा गाँधी

तुम बसो मेरे नयन में

मैं तुम्हें पहचान लूँगा, तुम बसो मेरे नयन में,
नीलिमा जैसे निलय में और चन्दा नील नभ में,
स्वर बसें ज्यों रागिनी में, प्राण बसते ज्यों प्रणय में।।
ज्यों बसे सागर लहर में श्वास में जीवन मचलता,
मुस्कुराओ तुम जगत के मुखरतम प्रत्येक कण में।।
मैं तुम्हें पहचान लूँगा, तुम बसो मेरे नयन में।।1

प्यास बसती ज्यों अधर में, और आकुलता मिलन में,
स्वप्न हँसते ज्यों नयन में और मादकता सुरा में,
बीज में ज्यों वृक्ष रहता, तुम रहो मेरे हृदय में,
चीन्ह लूँगा मैं तुम्हें, गर तुम बसो जाकर गगन में,
मैं तुम्हें पहचान लूँगा, तुम बसो मेरे नयन में।।2

पीर हो कवि के हृदय में और कविता ज्यों विरह में,
राह में मंजिल बसे ज्यों और मंजिल में बसेरा,
तुम रहो यदि साथ मेरे राह को मंजिल बना लूँ,
दूर चाहे जा बसो पर बाँध लूँ तुमको प्रणय में,
मैं तुम्हें पहचान लूँगा तुम बसो मेरे नयन में।।3

गंध जैसे है कुसुम में और आभा है किरण में,
दृष्टि जैसे चक्षुओं में और धारा कूल में ज्यों,
तुम मुझे अपना बना लो तुम बसो मेरे हृदय में,
मैं धरा से देख लूँगा तुम रहो तारक चमन में,
मैं तुम्हें पहचान लूँगा, तुम बसो मेरे नयन में।4

आज तुम सुख स्वप्न मेरे, तुम मेरी मुस्कान प्रीतम,
तुम मेरी पूजा शुभे तुम अर्चना के गान प्रीतम,
कल्पना पावन सजीली प्राण की मधुतान प्रीतम,
खोज लूँगा मैं तुम्हें चाहे बसो जाकर पवन में,
मैं तुम्हें पहचान लूँगा, तुम बसो मेरे नयन में।।5

श्री आर के दीक्षित

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय।।
जिस भोजन को स्नेह और सम्मान से परोसा जाए, वह उन स्वादिष्ट व्यंजनों से भला है, जो अपमानित करके उपेक्षित भाव से परोसे जाएँ। ऐसे मैदे से बने ऐसे व्यंजनों को तो जला देना ही बेहतर है।

अब्दुल रहीम खानखाना

भाषा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य बोलकर, सुनकर, लिखकर व पढ़कर अपने मन के भावों या विचारों का आदान-प्रदान करता है। जब से मनुष्य ने बोलना आरम्भ किया तब से ही भाषा की उत्पत्ति मानी गई है हालांकि भाषा की उत्पत्ति को लेकर कई धारणाएं विद्यमान हैं जो ज्यादातर अनुमान पर आधारित हैं। मानव के इतिहास में यह काल इतना पहले आरम्भ हुआ कि इसके विकास से सम्बन्धित साक्ष्य मिलने असम्भव हैं। भाषा नदी के जल की भांति 'बहता नीर' है। हर भाषा के अपने गुण और दोष होते हैं। भाषा एक सामाजिक शक्ति है, जो मनुष्य को प्राप्त होती है। मनुष्य भाषा को अपने पूवर्जों से सीखता है तथा उसका विकास करता है। भाषा के महत्त्व को मनुष्य ने लाखों वर्ष पूर्व पहचान कर उसका निरंतर विकास किया है। प्राचीन काल में मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए संकेतों, चिह्नों एवं ध्वनियों का प्रयोग करता था । मनुष्य ने जैसे-जैसे ध्वनियों को लिपिबद्ध करना प्रारंभ किया वैसे-वैसे भाषा अपना आकार लेने लगी। मनुष्य के विकास के साथ-साथ भाषा भी विकसित होती चली गई। भाषा के बिना किसी भी सभ्य समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा समाज की सभ्यता और संस्कृति की संवाहक होती है । भाषा, समाज एवं व्यक्तित्व निर्माण में अहम् भूमिका निभाती है। भाषा से दूर होने का मतलब है अपनी संस्कृति से दूर होना। भाषा की बदौलत ही आज दुनिया में विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के क्षेत्र में अभूतपूर्व शोध-कार्य हुए हैं । उल्लेखनीय है कि इन शोध कार्यों के फलस्वरूप आज समाज में क्रांतिकारी बदलाव आये हैं। हम आप सब भलीभांति जानते हैं कि इन बदलावों ने हमारी जिंदगी को कितना आसान कर दिया है।

लिपि

किसी भी भाषा के लिखने के तरीके या ढंग को लिपि कहा जाता है । भाषा और लिपि का संबंध सिक्के के दो पहलुओं के समान है। भाषा के बिना किसी लिपि की संभावना नहीं की जा सकती। अनेक बोलियाँ और उप बोलियाँ ऐसी हैं जो भावों और विचारों को व्यक्त करने का कार्य करती हैं परन्तु लिपि के अभाव में उनका विशेष महत्व या प्रचार-प्रसार नहीं हो पाता। लिपि के अभाव में अनेक भाषाएँ उत्पन्न होकर नष्ट हो गईं । भाषा और लिपि की उत्पत्ति एवं विकास का इतिहास आज भी शोधकर्ताओं के लिए एक शोध का विषय बना हुआ है। मनुष्य जब गुफाओं में रहता था तब वह आपस में बात-चीत करने एवं अपने दैनिक क्रिया-कलापों को निष्पादित करने के लिए विविध प्रकार की रेखाओं के माध्यम से कुछ आकृतियाँ बनाया करता था। अपने पालतू जानवरों की पहचान करने के लिए उनके शरीर पर विविध प्रकार के चिह्न बनाया करता था। किसी बात

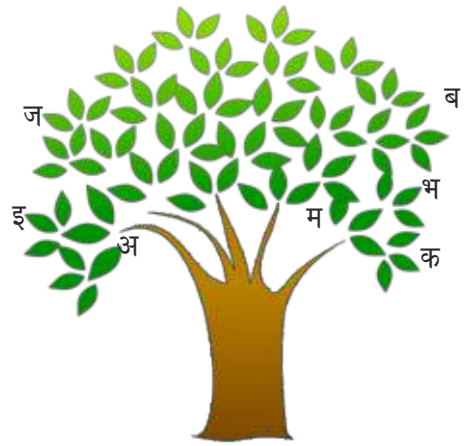

को स्मरण रखने के लिए मनुष्य पेड़ों पर लटकने वाली बेलों तथा रस्सियों में गाँठ बांधकर रखता था। इस प्रकार आदिकाल में मनुष्य विविध साधनों के माध्यम से अपनी स्मरण शक्ति को कायम रखता था। इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर समयानुसार विविध लिपियों का विकास होता चला गया। लिपि-विज्ञानियों ने चित्रों एवं लकीरों को विकसित करके वर्णों का आकार प्रदान किया तथा इन्हीं आकृतियों को लिपि का नाम दे दिया गया। धीरे-धीरे विविध भाषाओं की अपनी-अपनी लिपियाँ विकसित होने लगीं। भारत में प्रचलित विभिन्न लोकप्रिय लिपियों में से एक लिपि है 'देवनागरी लिपि' । देवनागरी लिपि एक ऐसी लिपि है जिसमें अनेक भारतीय भाषाएँ लिखीं जाती हैं इन भाषाओं में प्रमुख रूप से संस्कृत, पालि, हिन्दी, मराठी, कोंकणी, सिन्धी, कश्मीरी, डोगरी, नेपाली, गढ़वाली, भोजपुरी, मैथिली एवं संथाली भाषा के अतिरिक्त अन्य कई भारतीय भाषाएं शामिल हैं। देवनागरी लिपि बायें से दायें लिखी जाती है, इसकी पहचान एक क्षैतिज रेखा से है जिसे 'शिरोरेखा' कहते हैं।

भारत राष्ट्र की भाषाएं

भारत एक विशाल देश है । भाषिक और सांस्कृतिक विविधता भारत को विश्व पटल पर एक अलग पहचान दिलाती है । इस पहचान का केवल सामाजिक महत्व ही नहीं है बल्कि यह आर्थिक दृष्टि से भी यह बहुत उपयोगी है। भारत में हर 30-40 किलोमीटर की दूरी पर रहन-सहन, बोली एवं संस्कृति में भिन्नता पाई जाती है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1652 मातृभाषाएं प्रचलन में हैं । भाषा एक अत्यन्त संवेदनशील एवं भावनात्मक विषय है । भावनाओं को ध्यान में रखते हुए हर नागरिक को एक-दूसरे की भाषा का सम्मान करना चाहिए क्योंकि दूसरे की भाषा का सम्मान करने से ही स्वयं की भाषा का सम्मान होता है । यदि हिन्दी भाषी चाहता है कि कोई तमिल भाषी उसकी भाषा का सम्मान करें तो फिर हिन्दी भाषी को भी उसकी भाषा का बराबर सम्मान करना चाहिए ।

अपनी भाषा के अलावा हमें एक-दो अन्य भाषाएं भी सीखने का प्रयास करना चाहिए। दूसरी भाषाओं के शब्दों का अपनी भाषा में यथासंभव प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से अपनी भाषा तो समृद्ध होगी ही साथ ही साथ उस भाषा को बोलने वाले व्यक्ति भी हमारी भाषा के प्रति सम्मान का भाव रखेगें। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रयास से समाज के अन्दर सौहार्द का भाव उत्पन्न होगा और संबंधों में प्रगाढ़ता भी आयेगी।

आइए अब बात कर लेते हैं राष्ट्रभाषा की। राष्ट्रभाषा वह भाषा होती है जो सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती हो। वह अधिकाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा होती है। प्रायः राष्ट्रभाषा ही किसी देश की राजभाषा भी होती है। विश्व के अधिकांश देशों में एक ही भाषा को राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। भारत एक बहुभाषी देश है और यहाँ पर सामाजिक,भौगोलिक एवं भाषायी दृष्टि से इतनी अधिक विविधताएं पाई जाती हैं कि किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में घोषित करना संभव ही नहीं हो सकता। हाँ, संविधान की आठवीं अनूसची में जरूर 22 भाषाओं का उल्लेख किया गया है जिसमें हिन्दी भाषा भी सम्मिलित है। इन सभी भाषाओं को आधिकारिक (संवैधानिक) भाषाओं का दर्जा दिया गया है तथा संबंधित राज्यों में राजभाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही हैं। इन सभी भाषाओं का अपना-अपना इतिहास एवं साहित्य है। इनकी लोकप्रियता एवं प्रभाव भी एक दूसरे से कम नहीं है। इनको बोलने एवं समझने वालों की संख्या भी व्यापक है। संविधान की आठवीं अनूसची में उल्लिखित 22 भाषाओं की सूची इस प्रकार से हैः असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, गुजराती, डोगरी, तमिल, तेलुगू, नेपाली, पंजाबी, बंगाली, बोडो, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, मैथिली, संथाली, संस्कृत,सिन्धी एवं हिन्दी।

राजभाषा

जब देश आजाद हो रहा था तब देश को संवैधानिक तरीके से चलाने के लिए एक संविधान की जरूरत महसूस की गई। तदनुसार, संविधान सभा का गठन हुआ। सभा द्वारा संविधान का प्रारूप तैयार किया जाना था। संविधान सभा में चर्चा के दौरान संघ एवं राज्यों से जुड़े हुए अनेक विषयों पर गरमा-गर्म बहस हुई। चर्चा के उपरान्त इन विषयों से संबंधित कानून बनें। इन्हीं विषयों में से एक विषय था कि संघ की राजभाषा क्या होनी चाहिए? संघ की राजभाषा से तात्पर्य केन्द्र सरकार के शासकीय काम-काज की भाषा से है। संविधान सभा में जब देश की राजभाषा को लेकर बहस हुई आखिरकार लंबी बहस के उपरान्त देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गई। तत्पश्चात संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप को भी मंजूरी दे दी गई। संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के तहत इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था दी गई कि संविधान लागू होने के पंन्द्रह वर्षों (अर्थात सन् 1965) तक अंग्रेजी सहायक भाषा के रूप में जारी रहेगी ताकि केन्द्र सरकार के काम-काज में हिन्दी पूर्णरूप से अंग्रेजी का स्थान हासिल कर ले परन्तु पन्द्रह वर्ष पूरे होने से पहले ही संसद को यह अधिकार दे दिया गया कि यदि वह चाहे तो पन्द्रह वर्ष की अवधि के पश्चात् भी अंग्रेजी भाषा का सह-भाषा के रूप में प्रयोग जारी रख सकती है। उल्लेखनीय है कि यह व्यवस्था आज भी बदस्तूर जारी है। आज राजभाषा की संवैधानिक स्थिति यह है कि कागजों में तो संघ की राजभाषा हिंदी और सह-भाषा अंग्रेजी है लेकिन वास्तविकता ठीक इसके विपरित है अर्थात् आज भी अंग्रेजी अघोषित रूप से राजभाषा बनी हुई है जबकि हिंदी केवल सह-भाषा के रूप में बनकर रह गई है।

निष्कर्ष

राजभाषा के रूप में हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार करने के लिए भारत सरकार के गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राजभाषा विभाग द्वारा अनेक प्रशिक्षण केन्द्रों का संचालन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थान भी अपनी सेवाएं दे रहे हैं। संविधान के अनुच्छेद 351 के तहत केन्द्र सरकार को एक विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वह हिंदी भाषा का इस प्रकार प्रचार-प्रसार एवं उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके तथा उसका शब्द भंडार समृद्ध और संवर्धित हो सके। हालांकि प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया, फिल्म एवं पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में सबसे अधिक योगदान दिया है और इन सभी ने लोगों को हिन्दी भाषा सीखने के लिए प्रेरित भी किया है।

हिन्दी को थोपा नहीं जा सकता किन्तु प्रेम और निष्ठा के साथ सभी राष्ट्रभाषाओं को उचित महत्व देते हुए हिन्दी के प्रयोग को और अधिक व्यापक बनाया जा सकता है।

जगदीश प्रसाद

हिंदी

हिंदी की होड़ किसी प्रांतीय भाषा से नहीं, केवल अंग्रेजी के साथ है।

डॉ.राजेन्द्र प्रसाद

मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रान्तों की मातृ भाषा हिंदी है वहाँ भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह दिखाई नहीं देता है। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी भाषाओं को उनके योग्य स्थान नहीं देते तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।

महात्मा गाँधी

पाती

अंतस के त्रयोदश अंक में प्रकाशित लेख राजभाषा और राजभाषा के रूप में हिंदी तथा राष्ट्रभाषा हिंदी के संदर्भ में

अंतस के गतांक में राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा उपर्युक्त दो लेख प्रकाशित किये गये थे जिन पर हमारे एक सम्मान्य पाठक द्वारा इस आशय की आपत्ति प्रेषित की गयी कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में उल्लखित किया जाना, वह भी राजभाषा प्रकोष्ठ के लेखों में, तथ्यात्मक रूप से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि भारतीय संविधान में कहीं भी किसी राष्ट्रभाषा का उल्लेख नहीं है।

अंतस के सम्पादक मण्डल द्वारा प्रश्नगत आपत्ति का संज्ञान ले लिया गया है तथा अंतस का पूरा प्रयास रहेगा कि राजभाषा प्रकोष्ठ के स्तर से अंतस के आगामी अंकों में तथ्यात्मक त्रुटियों की ऐसी पुनरावृत्ति न हो।

इस संदर्भ में अंतस अपने एक और सम्मान्य पाठक प्रोफेसर भास्करदास गुप्ता के संदेश को भी सभी पाठकगण के समक्ष रखना समीचीन समझता है जिसमें उन्होंने अंतस की विषय सामग्री एवं लेखन स्तर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। संदेश इस प्रकार है -

Post-lunch delivery of Antas. Need of a small break in the verandah, obviously with some light reading material.

Why not the just-delivered Antas?

Blessed was the moment when I started reading the article (that can happily be called a story as well). Next few minutes impossible to keep track how many of them also blessed in top quality writing.

If you can read Hindi, do not miss it.

Dhanya hain Vedprakashji, dhandya hai aapkee kalam.

- Bhaskar

अंतस परिवार प्रोफेसर भास्करदास गुप्ता की सराहना के लिए उनका आभार व्यक्त करता है।

पुनश्च: पाठकों को इस संदर्भ में हमें यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि अंतस ने अपने इस अंक से क्रमश: देश की अन्य भाषाओं एवं उनके साहित्य पर 'भाषा यात्रा' स्तम्भ के अन्तर्गत वर्णमाला क्रमानुसार एक परिचयात्मक लेख प्रकाशित करने का निर्णय लिया है जिसके प्रथम सोपान पर इस अंक में 'असमिया भाषा' रखी गई है।

अंतस परिवार

असमिया भाषा

भारत की विभिन्न भाषाएं एवं बोलियां उसकी सामासिक संस्कृति की पहचान हैं। निस्संदेह इन भाषाओं ने देश को एकता के सूत्र में बाँधे रखने का काम किया है। यद्यपि भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग भाषायें बोली,लिखा जाती हैं किन्तु मूल रूप से 22 भाषाओं को संविधान की अष्टम् अनुसूची में स्थान दिया गया है जब कि कुछ अन्य भाषाओं को अनुसूची में स्थान दिलाने की प्रक्रिया चल रही है। अपनी भाषा से इतर दूसरी भाषा को सम्मान देना तथा अनौपचारिक रूप से नई भाषा को सीख लेना भारत के लोगों की पहचान रही है। इस पहचान को बनाये रखने तथा हरेक भाषा को उचित सम्मान दिलवाने की कोशिश होनी चाहिए। इस कृत्य के लिए शासन -प्रशासन के साथ-साथ भारत के प्रत्येक नागिरक को आगे आने की जरूरत है। इस लेख में हम 'असमिया भाषा' पर दृष्टिपात करते हुए अपनी भाषा-यात्रा की शुरुआत कर रहे हैं। गौरतलब है कि 1991 की जनगणना के अनुसार असमिया बोलने वालों की तादाद 1,29,38,088 थी। इस भाषा के इतिहास, शब्द समूह, साहित्य, क्षेत्रविस्तार, लिपि, आदि की संक्षिप्त चर्चा करके हम अपने पाठकों का असमिया भाषा से आत्मीय संबंध स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं।

भाषा-परिवार असमिया को असमी अथवा आसामी भी कहा जाता है। यह असम राज्य की राज भाषा है। इसके अलावा असम में और अन्य भाषाएं भी बोली जाती है। भाषाई परिवार की दृष्टि से इसका संबंध आर्य भाषा परिवार से है और बांग्ला, मैथिली, उड़िया एवं नेपाली से इसका निकट का संबंध है। प्राकृत एवं अपभ्रंश से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। असमिया की मूल प्रकृति में उसकी सीमावर्ती भाषाएं - तिब्बती, बर्मी तथा खासी का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस प्रकार असमिया ने भी अन्य भाषाओं की तरह उदारता का परिचय देते हुए अपनी सीमावर्ती भाषाओं के शब्दों को अपने में समाहित किया है जिससे इस क्षेत्र के लोगों के बीच में आपसी संबंध मधुर हैं।

इतिहास भाषागत विशेषताओं के आधार पर असमिया के विकास के तीन काल माने जाते हैं। प्रारंभिक असमिया का काल 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के अंत तक माना जाता है। इस काल को पुनः दो युगों में विभक्त किया जा सकता है (अ) वैष्णव-पूर्व युग तथा (आ) वैष्णव युग। इस युग के लेखकों ने असमिया का स्वाभाविक रूप प्रयोग में लाया है। इस युग में व्याकरण की दृष्टि से भाषा में पर्याप्त एकरूपता नहीं मिलती।

17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी को मध्य असमिया का काल कहा जाता है। इस युग में अहोम राजाओं के दरबार की गद्यभाषा का रूप प्रधान है। इन गद्य लेखकों को बुरंजी कहा गया है। बुरंजियों की भाषा आधुनिक रूप के अधिक निकट है।

आधुनिक असमिया का काल 19वीं शताब्दी से माना गया है जिसमें सबसे पहले असमिया गद्य में बाइबिल का अनुवाद किया गया। अमरीकी मिशन द्वारा 1846 ई. में एक मासिक पत्र "अरुणोदय" प्रकाशित किया गया और कालांतर में सन् 1867 में असमिया का पहला व्याकरण छपा। इसी प्रकार सन् 1867 में प्रथम असमिया अंग्रेजी शब्दकोष प्रकाशित किया गया।

वर्णमाला असमिया की वर्णमाला में स्वतंत्र स्वर, व्यंजन, मात्राएं, विराम चिह्नें एवं अंकों का एक सुव्यवस्थित क्रम है। असमिया वर्णाक्षर प्रायः बांग्ला के समान हैं जिनमें ग्यारह स्वतंत्र वर्ण हैं। उच्चारण के साथ स्वरों के चिह्न इस प्रकार हैं -

অ (अ), আ (आ), ই (इ), ঈ (ई), উ (उ), ঊ(ऊ), ঋ (ऋ), এ(ए), ঐ(ए), ও(ओ), ঔ (औ)

इसी प्रकार असमिया में 33 शुद्ध व्यंजन हैं जिनमें से कुछ को नीचे दर्शाया जा रहा है:

ক (क, ka), ঘ (घ, gh), চ (च, pratham ca), ঝ (झ, jha), ল (ल, la), ব (व, ba), হ (ह, ha)

असमिया लिपि में अंको की एक व्यवस्था है:-

अंतरराष्ट्रीय अंक	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
असमिया अंक	০	১	২	৩	৪	৫	৬	৭	৮	৯	১০
असमिया नाम	शून्य	एक	दुई	तिन	चार	पाच	छह	सात	आट्	नहय	द

लिपि असमिया लिपि मूलतः ब्राह्मी का ही एक विकसित रूप है। बांग्ला से उसकी निकट समानता है। इस लिपि का प्राचीनतम उपलब्ध रूप

भास्करवर्मन का 610 ई. का ताम्रपत्र है । किन्तु इसके बाद से आधुनिक रूप तक लिपि में "नागरी" के माध्यम से कई परिवर्तन हुए हैं ।

क्षेत्रविस्तार एवं शब्दसमूह क्षेत्रविस्तार की दृष्टि से असमिया भाषा के कई उपरूप सुनने को मिलते हैं । पूर्वी तथा पश्चिमी रूप इनमें प्रमुख हैं । साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से पूर्वी रूप को ही मानक माना जाता है । इन प्रमुख रूपों में ध्वनि, व्याकरण एवं शब्दसमूह की दृष्टि से अंतर मिलते हैं । असमिया भाषा में संस्कृत के तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं के शब्दों की संख्या भी कम नहीं है । भाषा में सामान्यतः तद्भव शब्दों की प्रधानता है । पूर्वी सीमा पर स्थित होने के कारण असमिया का कई अनार्य भाषा 5 परिवार से संबंध हैं जिनमें खासी, कोलारी, मलायन, बर्मा, बोडो तथा अहोम प्रमुख भाषाएं हैं। अनार्य भाषाओं के प्रभाव को असम के अनेक स्थान नामों में भी देखा जा सकता है ।

साहित्य असमिया के शिष्ट एवं लिखित साहित्य के इतिहास को पाँच कालों में बाँटा जाता है - वैष्णवपूर्वकाल (1200-1449 ई.), वैष्णव काल (1449-1650 ई), गद्य बुरंजी काल (1650-1926 ई.), आधुनिक काल (1026-1947 ई.) स्वाधीनतोत्तरकाल (1947 ई. से)। असमिया की पारंपरिक कविता उच्चवर्ग तक ही सीमित थी । भट्टदेव ने असमिया गद्य साहित्य को सुगठित रूप प्रदान किया । दामोदर देव ने प्रमुख जीवनियाँ लिखीं । पुरषोत्तम ठाकुर ने व्याकरण पर काम किया । अठारहवीं शती के तीन दशकों तक साहित्य में विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं दिए । उसके बाद चालीस वर्षों तक असमिया साहित्य पर बांग्ला का वर्चस्व रहा । असमिया साहित्य को जीवन प्रदान करने में चन्द्र कुमार अग्रवाल, लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा एवं हेमचन्द्र गोस्वामी का महत्वपूर्ण योगदान रहा । इस भाषा में क्षेत्रीय व जीवनी रूप में भी बहुत से उपन्यास लिखे गए हैं ।

इसी कड़ी में भुपेन हजारिका को याद करना समीचीन होगा जो असमिया भाषा के महान कवि, फिल्म निर्माता, लेखक और असम की संस्कृति और संगीत के अच्छे जानकार रहे हैं । उन्होंने देश-विदेश में असमिया भाषा को पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । अपनी मूल भाषा असमिया के अलावा भूपेन हजारिका हिंदी, बंगला समेत अन्य भारतीय भाषाओं में गायन करते रहे थे । उनकी असरदार आवाज का जादू आज भी "दिल हूम हूम करे" और "ओ गंगा तू बहती है क्यों" गीतों के माध्यम से सिर चढ़ कर बोल रहा है ।

सामान्य शब्दों से परिचय सामान्य तौर पर कोई व्यक्ति जब अपनी मातृभाषा के अलावा किसी अन्य भाषा को सीखने का प्रयास करता है तो वह सर्वप्रथम उस भाषा के उन शब्दों को सीखने की चेष्टा करता है जिनका प्रयोग सामान्य व्यवहार में अधिक किया जाता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए हम असमिया के प्रचलित शब्दों का यहाँ उल्लेख कर रहे हैं और साथ में सहूलियत के लिए उनका उच्चारण (रोमन मे) भी दे रहे हैं । India - भारत - ভাৰত (bhaarot) महीनों के नाम - বহাগ (bahaag), জেঠ আহাৰ (aahar), শাওন (saaon), ভাদ (bhaad), আহনি (aahin), কাৰ্তি (kaati), আঘনে(aaghun), পুহ (puh), মাঘ (maagh), ফাগুন (phaagun), চ'ত (sot)

दिनों के नाम - দেওবাৰ (deubaar), সোমবাৰ (sumbaar), মঙ্গলবাৰ (mangalbaar), বুধবাৰ (budhbaar), বৃহস্পতিবাৰ (brihaspatibaar), শুক্ৰবাৰ (hukrabaar), শনিবাৰ (nibaar)

असमिया भाषा हमारी सांस्कृतिक पहचान है तथा इसका गौरवशाली इतिहास है जो आधुनिक रूप में भी बरकरार है । कहते हैं किसी भाषा का कठिन अथवा सरल होना उसके प्रयोग पर निर्भर है । इस दृष्टि से असमिया को सीखना आसान है, बस जरूरत है तो इच्छाशक्ति की । देश के भाषा संस्थानों में आप दाखिला लेकर असमिया भाषा सीख सकते हैं तथा निजी प्रयास से इस भाषा को सीखने की इच्छा रखने वाले लोग विभिन्न लेखकों की पुस्तकों एवं इंटरनेट के माध्यम से इस भाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । इस प्रकार हम अपनी भाषा-यात्रा के पहले पड़ाव पर रुक रहे हैं। अंतस के अगले अंक में एक और भाषा की गाथा के साथ आपसे फिर मिलेंगे ।

जयहिन्द !

भारत देशमुख

सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

जो मनुष्य सभी प्राणियों में एक ही परमात्मा को देखता है, वह उसके पश्चात किसी से घृणा नहीं करता है।

बुद्धि की परीक्षा

एक बहुत बड़ा शहर था जहाँ मकानों पर सवा लाख छप्परों के ऊपर छप्पर थे और भूल-भुलैया वाली गलियाँ थीं। एक बहुत बड़ा बाजार था जिसमें हजारों लड़के-बच्चे खेला करते थे। बरसात ऐसी होती थी कि केकड़े पानी की धार के साथ चला करते थे। पेज का दलदल मचता था। सियार कहानी कहते थे और बूढ़ा भालू हुंकार भरता था। पेड़ की एक डाल टूटती थी तो चिता की लपटें उठने लगती थीं। सीधा बाँस जहाँ टेढ़ा नहीं था और टेढ़ा बाँस जहाँ सीधा नहीं था। ऐसा एक अजीब शहर बसा हुआ था।

इस अजीब शहर में एक धनी-बनिया रहता था। उसकी एक पत्नी थीं जिसके सात पुत्र थे। जब वे सातों पुत्र बड़े हुए तो एक दिन बनिये को उनकी बुद्धि की परीक्षा लेने की सूझी। उसने अपने सातों पुत्रों को एक-एक करके बुलाया और सबको एक-एक हजार रूपये देकर कहा कि तुम लोग इन रूपयों से ऐसी चीजें खरीद लाओ जिससे हम लोगों का व्यापार बढ़ सके और सुख से जीवन-निर्वाह हो सके। सभी लड़के अपने पिता से एक-एक हजार रूपये पाकर परदेश निकल गये। बड़ा लड़का एक दूसरे शहर धंधाधपट में जाकर एक हजार रूपये की गाय, भैंस, बैल और बकरियाँ खरीद लाया। दूसरा लड़का सिंधुपुरी गया। वहाँ से उसने कपड़ा, मसाला, नमक, तेल तथा व्यापार के लिए अन्य वस्तुएँ खरीदीं। तीसरे लड़के ने एक हजार रूपये से खेती करने के लिए जमीन खरीद ली। बनिये के अन्य लड़कों ने भी व्यापार से संबंधित अन्य अनेक तरह की वस्तुएँ खरीदीं। किंतु बनिये के सबसे छोटे सातवें बेटे ने अपने एक हजार रूपयों से रामपुर शहर से विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु खरीदे। इन जीव-जन्तुओं में बाज पक्षी (गिद्ध), कुत्ता, बिल्ली, कौआ, सर्प और मोर प्रमुख थे। उसने घर लौटकर ये सारी चीजें पिता को दिखलाईं। पिता इन जीव-जन्तुओं में रूपये नष्ट होते देखकर गुस्से से आगबबूला हो गया। उसने अपने सभी बेटों की प्रशंसा की किंतु छोटे बेटे की खूब भर्त्सना की और कहा- ''तूने इतने रूपयों को मिट्टी में मिला दिया। तूने अपनी मृत्यु को ही बुलाने के लिए इन खरतनाक जीव-जन्तुओं को खरीदा। ये तुझे क्या खिलाएँगे वरन् जो भी घर में होगा, उसे ही खा-पीकर मिट्टी में मिला देंगे।''

पुत्र ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया - "जिस समय हमारी धन-दौलत हमारे लिए व्यर्थ हो जायेगी, उस समय ये सारे प्राणी ही हमारी मदद करेंगे।'' और उसने उन सभी प्राणियों को बड़े प्रेम से अपने घर में स्थान दिया और उन्हें उनके उपयुक्त काम सिखाना शुरू कर दिया। बाज पक्षी को उसने चिड़िया पकड़ना सिखाया। कुत्ते को शिकार का अभ्यास कराया। बिल्ली को चूहा पकड़ना सिखाया। सर्प को विभिन्न प्रकार के

शत्रुओं को डसना सिखाया तथा मयूर को मनोहर नृत्य करने की शिक्षा दी। और इसी तरह अंत में उसने कौए को संदेशवाहक का कार्य सिखलाया ताकि वह किसी भी स्थान से गुप्त समाचार ला सके। जब ये सभी प्राणी अपनी-अपनी शिक्षा में सिद्धहस्त हो चुके तब उनके स्वामी ने इनके उपयोग का विचार कर सभी को उनके कार्य सौंपे। सबसे पहले उसने कौए को उसका काम सौंपा। कौए का काम था प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में ब्रह्म लोक जाकर ब्रह्मा के दरबार का हाल जानना और सारे समाचार लाकर अपने मालिक को बताना। कौआ तेजी से अपने गंतव्य की ओर उड़ा और उड़ता-उड़ता देवलोक में जा पहुँचा। वहाँ दरबार भरा हुआ था। सभी देवता विचार-विमर्श हेतु एकत्रित थे। कौआ दरबार के समीप ही एक लोहे के खंभे पर जा बैठा। वह इस तरह रोज ही खंभे पर जा बैठता और वापस लौटकर अपनी आँखों देखा हाल अपने मालिक को सुना देता। इसी तरह कई दिन बीत गये।

एक दिन दरबार में ब्रह्मा, विष्णु और महेश अन्य देवताओं के साथ विराजमान थे। ब्रह्मा जी ने अन्य देवताओं से कहा कि मृत्युलोक के प्राणी बहुत घमंडी और पाखंडी हो गये हैं। वे अपने को इतना महत्व देने लगे हैं कि देवताओं तथा धार्मिक आचार-विचारों को हीन और व्यर्थ समझकर उनकी अवहेलना करने लगे हैं। अतएव क्यों न मृत्युलोक में इस बार घोर अकाल कर दिया जाये और वहाँ जाकर देखा जाये कि मनुष्यों में इसके निदान के लिए कितना बुद्धि-चातुर्य है। सभी देवताओं ने ब्रह्मा जी की इस बात का समर्थन किया। कौआ चुपचाप खंभे पर जा बैठा और यह सब सुनता रहा। दरबार की समाप्ति होने पर वह काँव-काँव करता हुआ वापस अपने घर लौट आया और सारा समाचार अपने मालिक को दे दिया। मालिक ने जब यह समाचार सुना तो वह चिंतित हो गया और अकाल के निराकरण का उपाय सोचने लगा। अंत में उसने एक उपाय सोचा और वर्ष

के प्रारंभ में ही एक ऐसे स्थान पर जाकर बस गया जहाँ कृषि के लिए पर्याप्त जल-स्रोत थे। पूर्वयोजना के अनुसार निश्चित समय पर पानी न बरसने के कारण घोर अकाल पड़ा। चारों ओर लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। भुखमरी और धनाभाव के कारण मृत्युलोक में साक्षात् मृत्यु का ताण्डव नृत्य होने लगा। ब्रह्मा जी ने देवलोक से एक अश्विनीकुमार को मृत्युलोक की स्थिति का अवलोकन करने के लिए भेजा। मृत्युलोक जाने के लिए अश्विनीकुमार ने अपना रूप और वेश-भूषा बदल ली और झोली लेकर फटे-पुराने कपड़ों में जगह-जगह घूमने लगा। घूमते-घूमते वह उस स्थान पर पहुँचा जहाँ बनिये का छोटा लड़का रहता था। उसके घर जाकर उसने झूठा नाटक रचा और भिक्षा माँगने लगा। बनिये के पुत्र ने उसे भूखा-प्यासा देखकर भोजन-पानी दिया और पहनने को अच्छे वस्त्र दिए। एक सूखे अकाल में भी अश्विनीकुमार ने जब उस धन-धान्य से संपन्न तथा उसकी लहलहाती फसलों को देखा तो वह मन-ही-मन उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करने लगा और आश्चर्यचकित होकर देवलोक वापस लौट गया। देवलोक में पहुँचकर उसने ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को मृत्युलोक का आँखों देखा यह सारा समाचार बतलाया।

देवतागण भी बनिये के पुत्र की इस बुद्धिमत्ता की बात सुनकर घोर आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने फिर वणिक् पुत्र की हरी-भरी खेती को नष्ट करने की योजना बनाई और इसके लिए पुनः अश्विनीकुमारों को बुलवाया तथा फसल के बारे में पूछताछ की। अश्विनीकुमारों ने बतलाया कि एक-एक दाबी से एक-एक बंधा अनाज होगा जिससे पूरे मृत्युलोक का उद्धार हो सकता है। देवताओं ने पुनः विचार-विमर्श कर यह निश्चय किया कि इस बार धान की बालियों को नष्ट करने के लिए सुग्गा पक्षियों को भेजा जायेगा। कौए ने जब यह सुना तो इसकी सूचना तत्काल अपने मालिक को ले जाकर दी। जब सुग्गा पक्षी असंख्य संख्या में धान की बालियें को नष्ट करने के लिए खेतों में उतरने लगे तो वणिक् पुत्र ने अपने पाले हुए बाज पक्षी को ले जाकर खेतों में छोड़ दिया। बाज पक्षी सुग्गों के समूह पर झपट पड़ा और वे उससे डरकर भागे और फिर दुबारा नहीं लौटे। इस तरह वणिक् पुत्र ने अपनी फसल की रक्षा कर ली।

देवताओं तक जब यह समाचार पहुँचा तो क्रोधित होकर उन्होंने चूहों को फसल नष्ट करने के लिए भेजा। कौआ यह समाचार भी ले जाकर अपने मालिक को दे चुका था। मालिक ने अपनी पाली बिल्ली को चूहों को पकड़ने का काम सौंपा। बिल्ली बड़ी फुर्ती से चूहों को पकड़-पकड़ कर मार डालती। इस तरह बिल्ली के कारण फसल बच गई।

अंत में खीझकर देवताओं ने फसल नष्ट करने के का कार्य सुअरों को सौंपा और निश्चिंत हो गये। कौए से यह समाचार जानकर वणिक् पुत्र ने इस बार भी इसके निराकरण का उपाय सोच लिया। सुअरों के उत्पात से अपनी फसल को बचाने के लिए उसने इस बार कुत्ते को भेजा। स्वामीभक्त कुत्ते ने भौंक-भौंक कर सुअरों को खेतों से खदेड़ बाहर किया और इस तरह इस बार भी फसल की पूरी-पूरी रक्षा हुई।

अब वास्तव में देवतागण चिन्ता में पड़ गये। पर उन्होंने आशा नहीं छोड़ी और एक बार फिर फसल नष्ट करने की योजना बनाई तथा निश्चित किया गया कि इस बार मनुष्यों को ही चोरी से धान की फसल काटने के लिए भेजा जाएगा। उन्हें मालूम था कि मनुष्य ही मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन होता है। देखें, इस बार वणिक् पुत्र कैसे जीत पाता है? कौए ने सदैव की भाँति यह समाचार भी अपने स्वामी को कह सुनाया। वणिक् पुत्र भी कम चतुर नहीं था। उसने इस बार अपने पाले गये सर्प का उपयोग किया। उसने सर्प को अपने खेत में छोड़ दिया। जब चोर चोरी करने खेत में घुसे तो सर्प ने सभी चोरों को डस लिया और वे मर गये। इस तहर वणिक् पुत्र ने अपने पाले गये जीव-जन्तुओं के द्वारा अपनी फसल की रक्षा की। देवलोक में जब यह समाचार पहुँचा तो सर्वत्र निराश की लहर फैल गई और सभी देवताओं को एकमत होकर मनुष्य की बुद्धिमत्ता की बात स्वीकार करनी पड़ी।

इधर वणिक् पुत्र ने समय पर फसल कटाई की। इस बार उसके यहाँ इतनी अधिक फसल हुई कि वह सबसे अधिक धनवान हो गया। इस खुशी में उसने अपने गाँव के सभी निर्धन व्यक्तियों को बुलाया और उन्हें उनकी आवश्यकता के अनुसार भरपूर अनाज दान में दे दिया। इस तरह उसने न केवल अकाल पर ही विजय पाई वरन् सबों के बीच अपनी बुद्धिमत्ता और उदारता के कारण बहुत लोकप्रिय हो गया। उसके पिता को अपने इस योग्य एवं बुद्धिमान बेटे पर अपार गर्व हुआ।

इधर सर्वत्र आनंद और उल्लास छाया हुआ था उधर देवलोक में देवताओं की मनुष्य से इस तरह की घोर पराजय की बात ने उन्हें क्रोध और ग्लानि से भर दिया था। एक सामान्य मनुष्य से देवतागण हार जायें, यह तो बिल्कुल असंभव बात थी हो संभव हो गई थी और इस भावना ने उनके मन में प्रतिशोध की प्रबल ज्वाला भड़का दी। उनका मिथ्या अहंकार चोट खाकर सर्प की तरह फुंकारकर उठ खड़ा हुआ। देवतागण मनुष्यों से और भी अधिक रूष्ट हो गए और हर क्षण उनसे प्रतिशोध लेने का उपाय सोचने लगे। जल्दी ही देवताओं ने एक सभा बुलाई और विचार-विमर्श किया। अंत में निर्णय लिया गया कि इस बार सारे मृत्युलोक को ही जलमग्न कर दिया जाये। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। प्रलय के पश्चात् पुनः नयी सृष्टि रची जायेगी जहाँ मनुष्य पूर्णतः देवताओं की महानता के आगे नत-मस्तक रहेंगे। कौआ नित्य की तरह यह सब सुन

रहा था। उसने यह सब जाकर अपने मालिक को कर सुनाया। इस बार वणिक् पुत्र ने गंभीरता से विचार किया। देवताओं से लोहा लेना कोई आसान बात नहीं थी। फिर भी वह कुछ करने के लिए तत्पर हो उठा। सबसे पहले उनसे अपने परिवार का भार अपने ऊपर ले लिया और देवताओं द्वारा वर्षा प्रारंभ करने से पूर्व ही बढ़ई के द्वारा लकड़ी का एक ऐसे घर बनवाया जिसमें उसके पूरे परिवार के लिए एक वर्ष तक के लिए खाने-पीने आदि का सभी सामान सुरक्षित रखा जा सके। काठ के इस मकान में पानी के निकास के लिए छोट-छोटे छिद्र भी बनाये गये थे ताकि वर्षा का पानी जल एकत्रित न हो सके और वह पानी की सतह पर तैर सके।

देवताओं की योजना के अनुसार इस बार घनघोर वर्षा हुई। एक वर्ष तक लगातार वर्षा का प्रकोप होता रहा। सारी धरती जल-मग्न हो गई। समस्त जड़ चेतना नष्ट हो गए। पर वणिक पुत्र का काठ का बना मकान वैसा-का-वैसा ही रहा और पानी पर ही तैरता रहा। उसके भीतर रहने वाले पारिवारिक जनों का तनिक भी अनिष्ट नहीं हो पाया। सभी उसके भीतर बड़े मजे से रह रहे थे। जब सारा संसार प्रलय की चपेट में नष्ट हो गया तब यह लकड़ी का घर तैरते-तैरते हिमालय पर्वत की चोटी से जा टकराया और रूक गया। जब एक लंबे समय के बाद वर्षा का जल धीरे-धीरे कम होता गया तो मकान भी स्वतः नीचे आता गया और अंत में जब पानी बिल्कुल कम हो गया तो मकान धरती की सतह पर आकर स्थिर हो गया।

अब देवताओं ने सोचा कि शायद ही कोई मानव इस संसार में बचा हो, अतः नई सृष्टि बनाने के लिए वे मृत्युलोक में विचरण करने लगे और भ्रमण करते-करते वे एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ वणिक पुत्र का लकड़ी का मकान स्थित था। मकान के अंदर देवताओं ने जीवन के चिह्न देखे तो आश्चर्यचकित रह गये। अब उन्हें वास्तव में पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि वे मनुष्य से पराजित हो गये हैं और मनुष्य सचमुच बहुत बुद्धिमान प्राणी है। अपनी इसी बुद्धिमत्ता के कारण ही वह विश्व के समस्त प्राणियों पर शासन कर रहा है। मृत्युलोक का अवलोकन कर देवतागण पुनः देवलोक वापस लौटे और एक सभा का आयोजन कर पुनः सृष्टि-रचना का विचार किया।

सभी ने मिलकर ब्रह्मा को सृष्टि-रचना के लिए वणिक पुत्र के यहाँ से एक दिया भर अन्न और एक दिया-भर जल माँगने के लिए भेजा। इन देवदूतों ने वणिक पुत्र के यहाँ जाकर एक दिया-भर अन्न और एक दिया-भर जल माँगा। वणिक पुत्र ने कहा कि अन्न-जल तो हम तुम्हें देंगे पर देते समय कोई साक्षी होना चाहिए। देवदूतों के समक्ष अब वास्तविक समस्या आ खड़ी हुई। चूँकि प्रलय के कारण कोई जीव-जन्तु जीवित नहीं बचा था, अतः साक्षी बनाने का जटिल प्रश्न उनके सामने था। अपने को इस कठोर संकट में पाकर उन्होंने ब्रह्म शक्ति की आराधना कर सूर्य और चन्द्रमा का स्मरण किया। सूर्य और चन्द्र दोनों आ पहुँचे। इन दोनों को अन्न-जल का साक्षी बनाया गया और इनकी उपस्थिति में देवदूत अन्न और जल लेकर ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्मा जी ने इस अन्न-जल से नवीन दुनिया की सृष्टि की। पर वणिक पुत्र के उधार दिये इस अन्न-जल को फिर कभी वापस नहीं किया। सूर्य और चन्द्रमा ने जब कभी देवताओं से मनुष्य का अन्न-जल वापस करने की बात कही तो देवता अपने कुटिल स्वभाव के कारण ऋण चुकाने में सदैव आनाकानी करते। ऋण के साक्षी होने के कारण सूर्य और चन्द्रमा पर अमावस्या और पूर्णिमा के दिन ग्रहण लगा करता है जिससे उन्हें अकारण कष्ट सहन करना पड़ता है। देवताओं का लिया हुआ ऋण आज भी सूर्य और चन्द्र अपने ही ऊपर लिये हुए हैं। इस तरह देवता मनुष्य के सामने सब तरह से पराजित हो गये। इसलिए आज भी मनुष्य अपने बुद्धि-चातुर्य के कारण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

साभार- रुद्रदेव झारी
भारत की लोक कथाएं

दीपावली

दिये पटाके बाजार में आये।
नूतन कपड़े सबको भाए।
देखो-देखो आई दीपावली।
खुशियाँ फैली गली-गली।

रंगोली जचती है द्वार पर।
पटाके शोर मचाये ऊपर
दीपावली हम खूब मनाएं।
लड्डू गुझिया मिलकर खाएं।

रौशनी की चादर ओढ़े।
घर-घर पर रौनक छोड़े।
लक्ष्मी जी को पहनाएं हार।
दीपावली सबका त्योहार।

कुमारी गार्गी जोशी

वाक्य-परिचय निश्चत क्रम में पदों का व्यवस्थित और सार्थक रूप वाक्य कहलाता है अर्थात् शब्दों के ऐसे समूह को वाक्य कहते हैं जो सार्थक भी हो और व्यवस्थित भी। सार्थक से तात्पर्य उसके अर्थयुक्त होने से है और व्यवस्थित से तात्पर्य उसके व्याकरण के नियमों के अनुरूप होने से है। वाक्य के द्वारा किसी विचार की अभिव्यक्ति सूचना, तथ्य, प्रश्न या उत्तर, आदेश, निदेश एवं विस्मय आदि के रूप में हो सकती है।

वाक्य के घटक वाक्य की रचना करते समय जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वे मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त रहते हैं, इसलिए वाक्य के दो अंग या घटक माने जाते हैं– (1) उद्देश्य और (2) विधेय।

(1) उद्देश्य
वाक्य में जिस व्यक्ति या वस्तु के सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है, उसे उद्देश्य कहते हैं। अतः काम करने वाले (कर्ता) को उद्देश्य कहते हैं। उद्देश्य प्रायः संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण शब्द होते हैं, कहीं पर क्रियार्थक शब्द भी उद्देश्य का अंश बन जाता है। जैसे–

1. रमेश गाँव जाएगा।
2. अभिमानी का सर्वत्र आदर नहीं होता।
3. घूमना स्वास्थ्य के लिए अच्छा रहता है।

पहले वाक्य में गाँव जाने का कार्य 'रमेश' कर रहा है। अतः रमेश उद्देश्य (कर्ता) है। दूसरे वाक्य में अभिमानी का आदर न होना वर्णित है इसमें 'अभिमानी' विशेषण–पद उद्देश्य (कर्ता) है। तृतीय वाक्य में 'घूमना' क्रियार्थक शब्द है जोकि वाक्य में उद्देश्य अंश (कर्ता) की तरह प्रयुक्त है।

(2) विधेय
वाक्य में उद्देश्य (कर्ता) के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है उसे विधेय कहते हैं। वाक्य में क्रिया और उसका पूरक विधेय होता है अर्थात् उद्देश्य (कर्ता) को छोड़कर वाक्य का शेष भाग विधेय के अंतर्गत आता है जैसे–
(क) आदमी जा रहा था।
(ख) वह पढ़ते–पढ़ते सो गया।
(ग) गीता लिखती है।

इन वाक्यों में 'जा रहा था', 'सो गया' और 'लिखती है' विधेय अंश हैं अर्थात् इनसे उद्देश्य के कार्य का ज्ञान होता है।

रचना के आधार पर वाक्य के भेद
1. सरल वाक्य
जिस वाक्य में एक उद्देश्य, एक विधेय और एक ही मुख्य क्रिया हो, उसे सरल या साधारण वाक्य कहते हैं। हालांकि सरल वाक्य में उद्देश्य एक या एक से अधिक हो सकते हैं परन्तु क्रिया एक ही रहेगी जैसे-
(क) बिजली चमकती है।
(ख) मोहन और सुरेश ने चोर को पीटा

2 . मिश्रित वाक्य
जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य और एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं उसे मिश्रित वाक्य कहते हैं, जैसे उसने कहा कि मैं आज बंबई जाउँगा । इस वाक्य में 'उसने कहा' प्रधान उपवाक्य है और 'कि मैं आज बंबई जाउँगा' आश्रित उपवाक्य है।

आश्रित उप वाक्य तीन प्रकार के होते हैं -
(क) संज्ञा उपवाक्य
(ख) विशेषण उपवाक्य
(ग) क्रिया-विशेषण उपवाक्य

(i) संज्ञा उपवाक्य
संज्ञा उपवाक्य संज्ञा के समान क्रिया के कर्ता, कर्म और पूरक आदि के रूप में कार्य करता है प्रायः संज्ञा उपवाक्य समुच्चय बोधक अव्यय 'कि' से जुड़ा रहता है। जैसे– हमारा विश्वास था कि भारत मैच जीत लेगा।

(ii) विशेषण उपवाक्य
जो उपवाक्य अपने प्रधान उपवाक्य के किसी संज्ञा या सर्वनाम शब्द की विशेषता बताता है, उसे विशेषण उपवाक्य कहते हैं। जैसे–यह वही छात्र है जो मेरे स्कूल में पढ़ता था। यहां पर 'जो मेरे स्कूल में पढ़ता था' विशेषण उपवाक्य है जो प्रधान उपवाक्य में छात्र(संज्ञा) की विशेषता बता रहा है।

(iii) क्रियाविशेषण उपवाक्य
जो उपवाक्य अपने प्रधान उपवाक्य के क्रिया शब्द की विशेषता बताता है या क्रिया-विशेषण का समानाधिकरण होता है उसे क्रियाविशेषण उपवाक्य कहते हैं। जैसेः जब–जब वर्षा होगी, तब–तब हरियाली फैलेगी। इन वाक्यों में जब–जब, तब–तब, क्रियाविशेषण की तरह प्रयुक्त होकर प्रधान उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बता रहे हैं।

3.संयुक्त वाक्य
जिन वाक्यों में दो या अधिक सरल वाक्य योजक (conjunction) द्वारा जुड़े होते हैं उन्हें संयुक्त वाक्य कहते हैं। योजक द्वारा जुड़े होने पर भी प्रत्येक वाक्य का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है । मुख्य

उपवाक्य अपने पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किसी दूसरे वाक्य पर आश्रित नहीं होता । उपवाक्य होते हुए भी उसमें पूर्ण अर्थ का बोध होता है। संयुक्त वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य और शेष समानाधिकरण उपवाक्य होते हैं । समानाधिकरण वाक्य चार प्रकार के होते हैं -

(I) संयोजक वाक्य- जिन वाक्यों का आपस में मेल प्रकट होता है उन्हें संयोजक वाक्य कहते हैं जैसेः एक पढ़ रहा है और दूसरा लिख रहा है (ii) विभाजकवाक्य-जिन वाक्यों से वाक्यों का आपस में विरोध प्रकट होता है उन्हें विभाज्य वाक्य कहते हैं जैसे वह निर्धन है फिर भी ईमानदार है। (iii) विकल्पदर्शक वाक्य - जिन वाक्यों से विकल्प प्रकट होता है उन्हें विकल्पदर्शक वाक्य कहते हैं जैसे जल्दी करो नहीं तो हमें गाड़ी नहीं मिलेगी।
(iv) परिणाम बोधक वाक्य- जिन वाक्यों से परिणाम का बोध होता है उन्हे परिणामबोधक वाक्य कहते हैं जैसे- वह देर से आया इसलिए उस पर जुर्माना हुआ।

अर्थ के आधार पर वाक्य के निम्नलिखित आठ भेद होते हैं -
1.विधानवाचक–जिन वाक्यों में क्रिया के करने या होने का सामान्य कथन हो उन्हें विधिवाचक या विधानवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे-हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है।

2.निषेधवाचक–जिन वाक्यों में कार्य के निषेध (न होने) का बोध होता हो, उन्हें निषेधवाचक वाक्य अथवा नकारात्मक वाक्य कहते हैं। जैसे– मैं वहाँ नहीं जाऊंगा।

3.आज्ञावाचक–जिन वाक्यों से आदेश/आज्ञा या अनुमति का बोध हो, उन्हें आज्ञावाचक वाक्य कहते हैं। जैसे– तुम वहाँ जाओ।

4.प्रश्नवाचक– जिन वाक्यों में कोई प्रश्न किया जाये या किसी से कोई बात पूछी जाये, उन्हें प्रश्नवाचक वाक्य कहते हैं। जैस– तुम्हारा क्या नाम है?

5.विस्मयबोधक–जिन वाक्यों में आश्चर्य, हर्ष, शोक, घृणा आदि के भाव व्यक्त हों, उन्हें विस्मयबोधक वाक्य कहते हैं। जैसे– अरे! इतनी लंबी रेलगाड़ी!

6.संदेह वाचक – जिन वाक्यों में कार्य के होने में सन्देह अथवा सम्भावना का बोध हो, उन्हें संदेह वाचक वाक्य कहते हैं। जैसे– शायद मैं कल बाहर जाऊं।

७.इच्छावाचक–जिन वाक्यों में किसी इच्छा, आशा या आशीर्वाद का बोध होता है, उन्हें इच्छावाचक वाक्य कहते हैं। जैसे–नववर्ष मंगलमय हो।
8.संकेत वाचक–जिन वाक्यों से एक क्रिया के दूसरी क्रिया पर निर्भर होने का बोध हो, उन्हें संकेत वाचक या हेतुवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे–वर्षा होती तो फसल अच्छी होती।

उपसंहारः-मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा उसे अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिए एक माध्यम की आवश्यकता होती है। मनुष्य यह माध्यम अनेक तरीके से चुनता है। यह माध्यम सांकेतिक, मौखिक अथवा लिखित हो सकता है। सामान्यतः मनुष्य भाषा द्वारा अपने विचारों तथा भावों को एक व्यवस्थित एव सार्थक माध्यम द्वारा प्रकट करता है। भाषा में शब्दों एवं वाक्यों का समावेश होता है जिससे भाषा का निर्माण होता है। वर्णों के मेल से शब्द बनते हैं और शब्द जब वाक्य में प्रयोग होते हैं तो वह पद कहलाते हैं । समस्त पशु-पक्षी भी अपने-अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं । पशु-पक्षी अपनी बोली के माध्यम से अपने भाव अभिव्यक्त करते हैं फिर चाहे वह अपना क्रोध ही प्रकट क्यों न कर रहे हों । पक्षी कोलाहल के माध्यम से भी अपने विचार प्रकट करते हैं परन्तु इसे हम उनकी भाषा नहीं कह सकते बल्कि पशु-पक्षियों के लिए यह एक बोली कहलाएगी ।

राजभाषा प्रकोष्ठ

मूलसिद्धांत

हजरत मुहम्मद कुछ दिन तक एक नगर में रहे। वे वहाँ एक खजूर के पेड़ के नीचे बैठकर उपदेश देते और लोग उन्हें सुनने वहाँ आया करते। धीरे-धीरे सुनने वाले श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ गई और वह स्थान तीर्थ की तरह पूजा जाने लगा। जब हजरत साहब का उस नगर से चलने का समय आया तो उन्होंने खजूर का वह पेड़ कटवा डाला। लोगों के कारण पूछने पर वे बोले- मैं नहीं चाहता कि लोग मूल सिद्धांतों को भूलकर व्यर्थ के प्रतीक पूजन में लग जाएँ। जो बातें मैंने अल्लाह के प्रति समर्पण से प्रेरित होकर कही हैं, उनका महत्व उनके अर्थ में रहना चाहिए, स्थूल व्यवहार में नहीं। अन्यथा लोग इस स्थान को पूजने में लग जाएंगे और उसके पीछे के संदेश को भूल बैठेंगे, जो मेरी दी गई सीख के विरुद्ध होगा।

उदघोष के समापन समारोह पर श्री अभिनव बिन्द्रा

ब्रिटिश काउन्सिल वर्कशॉप दि. 6-8 नवम्बर 2017, डॉ. संदीप वर्मा

बीएसबीई डे का डॉ. मान्ना द्वारा शुभारम्भ

एसीएमएस ओपेन हाउस दि. 9-9-2017

स्नेहन ओपेन हाउस

परिसर की सेवा में ओला साइकिल का शुभारम्भ करते हुए निदेशक प्रो. मणीन्द्र अग्रवाल

संस्थान के झरोखे से

स्थापना दिवस-2017 पर प्रेस को सम्बोधित करते हुए प्रो. मणीन्द्र अग्रवाल

स्पीक मैके-30-8-2017 पंडित रितेश मिश्रा एवं रजनीश मिश्रा की प्रस्तुति संस्थान परिसर में

वीना सहजवाला को प्रतिष्ठित पूर्वछात्र पुरस्कार

बफेलो यूनिवर्सिटी के साथ मैमोरेण्डम ऑफ अण्डरस्टैंण्डिग हस्ताक्षर करते हुए निदेशक प्रो. इन्द्रनील मान्ना

स्वच्छ भारत अभियान दि.2 अक्टूबर, 2017

वर्चुअल लैबोरेटरीज वर्कशाप

आईएनएसए एलओसी, भौतिकी विभाग पब्लिक व्याख्यान, प्रोफे.ए.के.सूद

कंप्यूटर विज्ञान और सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी के मूलभूत पहलुओं पर कार्यशाला

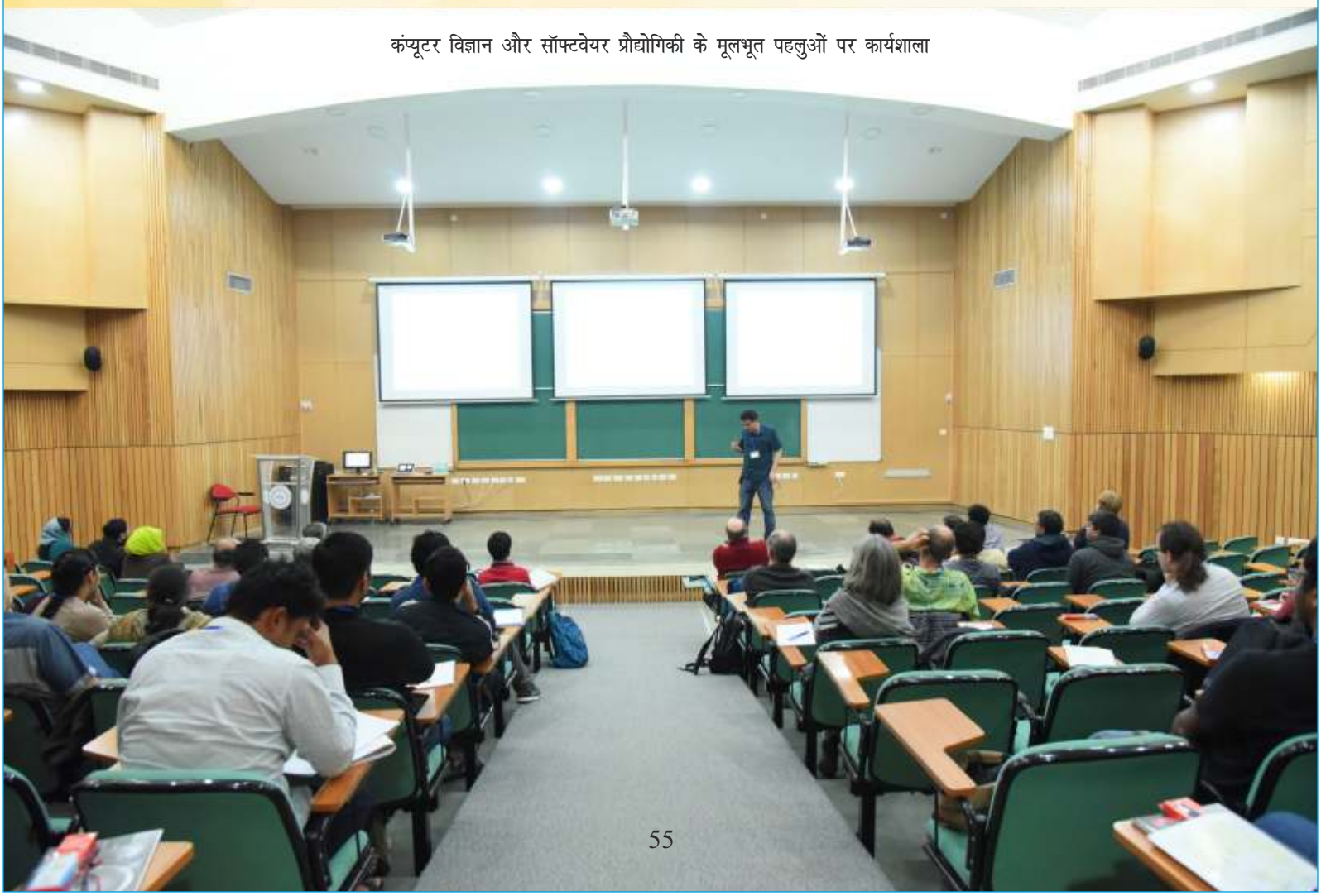

हिंदी दिवस–2017

उपर्युक्त	Above mentioned
प्राप्ति की सूचना भेजें	Acknowledge receipt
सहायता और सलाह	Aid and Advice
संदेह लाभ	Benefit of doubt
भूल-चूक	Errors and omissions
जवाब तलब किया जाए	Explanation may be called for
वैयक्तिक हैसियत से	In personal capacity
उचित माध्यम से	Through proper channel
अगले आदेश होने तक	Till further orders
अनुपालन करना	To comply with

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारणे साधुन धरा सरीर।।

संपर्क
राजभाषा प्रकोष्ठ
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर (उ.प्र.)
दूरभाष-0512-259-7122
ईमेल-kbalani@iitk.ac.in, vedps@iitk.ac.in, sunitas@iitk.ac.in
वेब-http://www.iitk.ac.in/infocell/iitk/newhtml/Antas/

अभिकल्प (Design) - सुनीता सिंह